सबला

वर्ष 9 : अंक 5 जागोरी, नई दिल्ली दिसम्बर-जनवरी 1998

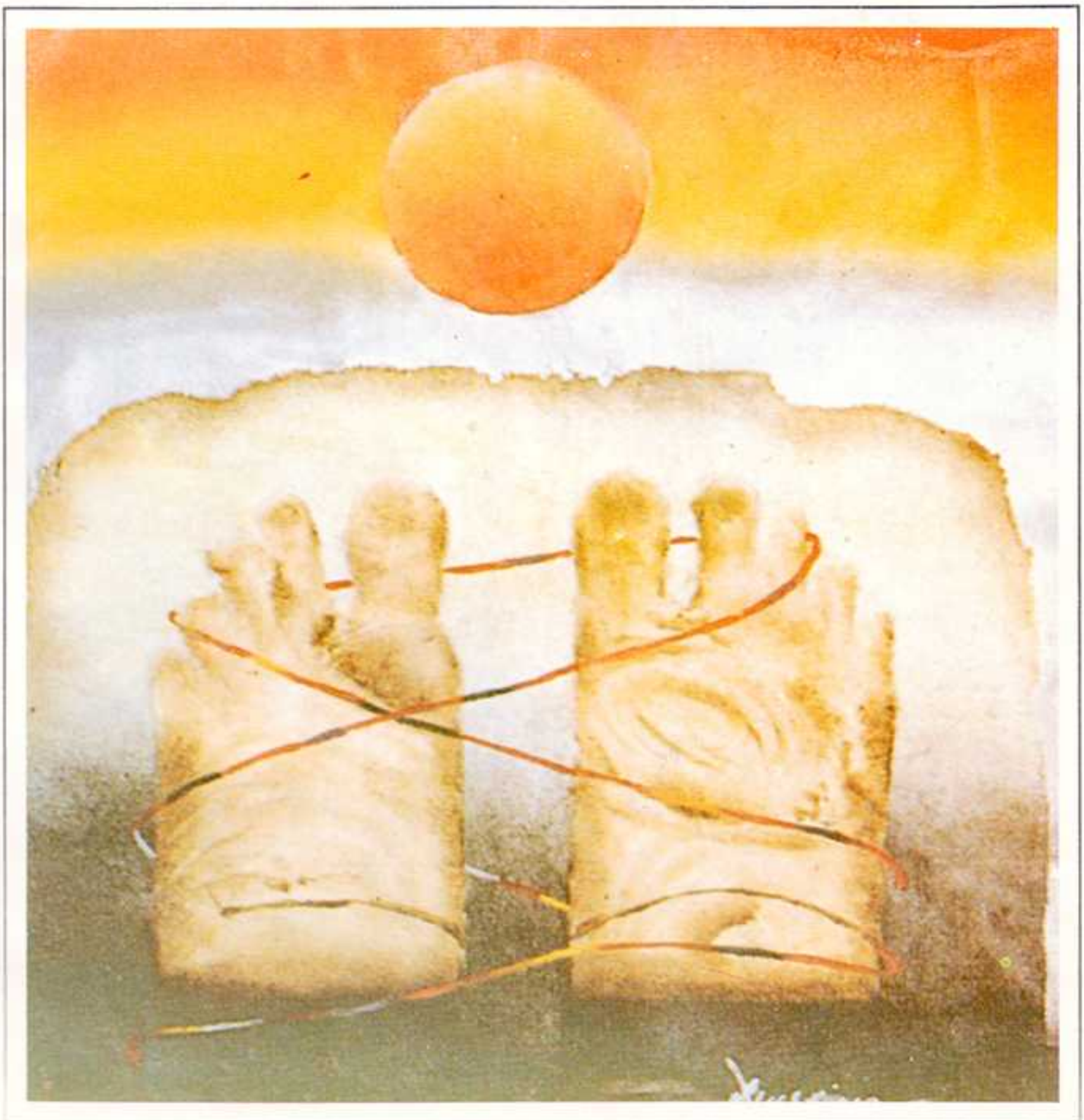

जागोरी
JAGORI

संपादक समूह
कमला भसीन
शारदा जैन
वीणा शिवपुरी
जुही जैन
सुनीता ठाकुर

सहयोग
जागोरी समूह

चित्रांकन
रेखा पंचोली (मुखपृष्ठ)
राजेश

प्रकाशन
गीता भारद्वाज, जागोरी

वितरण
प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका
शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत्त, सुश्री गीता भारद्वाज (जागोरी, सी-54 साउथ एक्सटेंशन-II, नई दिल्ली-110049) द्वारा प्रकाशित। वितरण कार्यालय, 1, दरियागंज, नई दिल्ली-110002। इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी.बी.टी.), 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित।

इस अंक में

हमारी बात 1

लेख

जैन्डर का बवन्डर अरे! यह है क्या? —कमला भसीन 3

हंसना, जीतना और भूल जाना —जुही 6

छठा राष्ट्रीय नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन —सुहास कुमार 7

महिलाएं, समाज और मस्जिद —बुरहानुद्दीन शकरूवाला 11

कहानी

एक अनकही कहानी —ऊषा 14

कुछ खोने से कुछ पाने तक —सुनीता ठाकुर 16

कविता

धुंध ही धुंध —डॉ शकुन्तला कालरा 18

एक गीत —सफदर हाश्मी 19

आशीष —दुष्यंत कुमार 19

क़ानून और अधिकार

नुक्कड़-नुक्कड़, आंगन-आंगन —सुनीता ठाकुर 20

उमा ने फैसला किया —जुही 21

शमीम बानो के कुछ सवाल —माया-शक्ति 23

वे हमें डायन कहते हैं...? —जुही 26

स्वास्थ्य

भोजन के रिवाज, विश्वास और औरतें 28

क्या आप जानती हैं? 30

हमारा पन्ना

बच्चों की टोली —कमला भसीन 34

किस्सा चूहों की सरकार का —सुनीता ठाकुर 34

चेतना —कविता वर्तवाल 35

आपकी जानकारी के लिए 36

हमारी बात

विकास का दंभ भरने वाले हमारे समाज में आज भी एक बड़ा प्रतिशत निरक्षर महिलाओं का है। तमाम कोशिशों के बावजूद उनकी साक्षरता और सामाजिक स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है
खुद बहनों में पढ़ने के प्रति एक उपेक्षा का भाव क्यों। पूरे घर को चलाने वाली गृहलक्ष्मी अगर अनपढ़ हो तो विकास कहां और कैसे होगा।
इसलिए सोचो–

बहनो, अब भी देर नहीं हुई है
हमारे साथ आओ
आओ हम अपना नाम लिखें
आओ पढ़ें

आओ आसपास की दुनिया जानें
आओ खुद को पहचानें
पहचानो कि माटी की गंध
जहां से मानव उगा है
हमारे पसीने की ही खुशबू है

बहनो अब भी देर नहीं हुई है
हमने दिन रात काम किया
और कई-कई बार दुनिया को बनाया
हमने दिन-रात काम किया
और अपने को खपाया
पर आश्चर्य!
कि जो आलस में पड़े रहे
ऊंचाईयों तक पहुंचे,
और हम
मेहनत की
गर्त में धकेले गए,

बहनो अब भी देर नहीं हुई है
ऐसा क्यों?
ऐसा क्यों?
क्या हमें अब तक नहीं पता
समय आ गया है
कि हम अपनी माटी
अपने पसीने की कीमत पहचानें
जब अक्षर ताकतवर अस्त्र बने हमारे हाथों में
जब किताबें हमारी दोस्त और साथी बनेंगी

जब एकता की ताकत हमें रास्ता दिखाएगी
तब हर चीज
हमारी इच्छा अनुसार चलेगी।

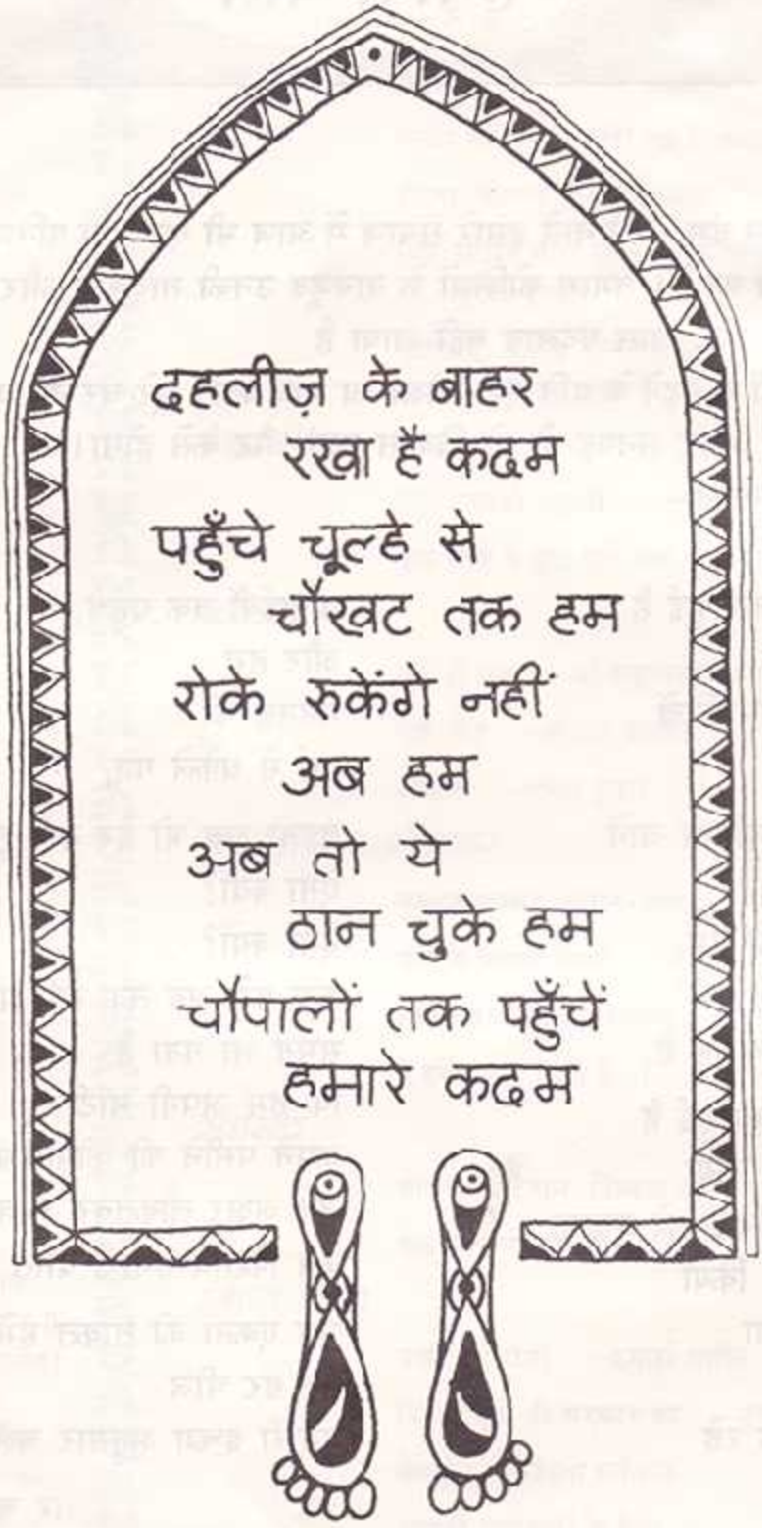
दहलीज़ के बाहर
रखा है कदम
पहुँचे चूल्हे से
चौखट तक हम
रोके रुकेंगे नहीं
अब हम
अब तो ये
ठान चुके हम
चौपालों तक पहुँचें
हमारे कदम

'जैन्डर' का बवन्डर

अरे! यह क्या है?

कमला भसीन

'जैन्डर' एक ऐसी सोच है जो समाज में लिंग-भेद (मर्द-औरत) का विरोध करती है और एक ऐसे समाज की कल्पना करती है जिसमें काम, गुण जिम्मेदारियां, व्यवहार और हुनर किसी लिंग, जाति, रंग और वर्ग के आधार पर थोपे न जाएं।

पता नहीं आप के कानों तक 'जैन्डर' शब्द अभी तक पहुंचा है कि नहीं पर पिछले आठ दस बरसों से 'जैन्डर' शब्द का बहुत बोलबाला है। यह शब्द हर तरफ़ छा सा गया है। विकास का काम कर रहे बहुत सारे लोग चाहे ग़ैर सरकारी हों या सरकारी, विदेशी हों या देशी, औरत हों या मर्द, इस शब्द का जोर-शोर से इस्तेमाल कर रहे हैं। पिछले दस बरसों में अनगिनत कान्फ्रेंस, वर्कशाप, ट्रेनिंग हुई हैं इसी 'जैन्डर' पर।

इस जबरदस्त प्रचलन के बावजूद बहुत ही कम लोग 'जैन्डर' की सीधी-सीधी परिभाषा दे पाते हैं। मेरा अपना तजुर्बा यह है कि बहुत ही कम लोग इस शब्द का ठीक इस्तेमाल करते हैं और इसमें उनका अपना कोई दोष शायद नहीं है क्योंकि उन बेचारों को किसी ने ठीक से यह शब्द समझाया ही नहीं है। उन पर तो मानो यह शब्द आसमान से बरसा या टपका है और फिर "जाकी रही भावना जैसी, 'जैन्डर' की समझ बनाई वैसी।" वैसे 'जैन्डर' शब्द पहले पहल तो हम सब ने व्याकरण में पढ़ा था। 'जैन्डर' यानि लिंग होता हैं—मेल जैन्डर, फ़ीमेल जैन्डर, न्यूटर जैन्डर यानि पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग, लेकिन आज 'जैन्डर' शब्द का प्रयोग बिल्कुल अलग तरीक़े से होता है। इस शब्द का प्रयोग शुरू किया गया समाज में औरत और मर्द के फ़र्क को समझने के लिए, यह समझाने के लिए कि औरत मर्द के बीच जो ऊंच-नीच के रिश्ते बन गए हैं वे रिश्ते प्राकृतिक या कुदरती नहीं हैं, उन्हें ऊपर वाले या वाली यानि किसी भगवान या देवी ने नहीं बनाया है। बहुत से लोग यह मानते हैं कि अपने शरीर की बनावट की वजह से औरत कमज़ोर है-मर्द ताक़तवर है, और कमतर है, मर्द बेहतर है यानि शरीर ही औरत मर्द की क़िस्मत है। एक बार औरत या मर्द का शरीर पा लिया तो फिर कुछ नहीं हो सकता। 'जैन्डर' शब्द का इस्तेमाल इस सोच को बदलने के लिए ही शुरु किया गया।

अंग्रेज़ी में सेक्स और 'जैन्डर' दो अलग अलग शब्द हैं। सेक्स है शारीरिक। बच्चा पैदा होता है

तो वह नर या मादा होता है। उसके शरीर को देखकर पता चल जाता है कि वह नर है या मादा। जिसके लिंग व अन्डग्रन्थियां हों वह लड़का, जिसके योनि हो वह लड़की। हर लड़की बड़ी होकर औरत बनती है, उसके शरीर में बच्चेदानी व स्तन होते हैं क्योंकि उसके शरीर में बच्चा बनता और बढ़ता है। शरीर के इस फ़र्क के अलावा लड़के और लड़की में कोई फ़र्क नहीं है और जिस्म की बनावट में भी समानता कहीं ज़्यादा है, फ़र्क बहुत कम। यौनिक और प्रजनन के अंगों के अलावा सब अंग एक से हैं।

सेक्स और 'जैन्डर': दो अलग चीज़ें

इस शारीरिक या जिस्मानी बनावट को प्राकृतिक लिंग (SEX) कहते हैं। अपने शरीर की बनावट की वजह से लड़के का लिंग पुरुष है और लड़की का स्त्री।

यह प्राकृतिक लिंग भेद प्रकृति ने बनाया है और यह भेद हर परिवार, समाज और देश में एक सा होता है—यानि शारीरिक रूप से लड़का हर जगह लड़का है और लड़की हर जगह लड़की।

शारीरिक भेद के अलावा जो लड़के लड़की में भेद बना दिए जाते हैं—जैसे उनके कपड़े, व्यवहार, शिक्षा, उनकी ओर समाज का रवैया वे सब सामाजिक भेद है प्राकृतिक नहीं। तभी तो ये भेद हर परिवार और समाज में एक जैसे नहीं हैं। जैसा हम देखते है किसी लड़की के बाल लम्बे हो सकते हैं किसी के छोटे। कुछ परिवारों में लड़के घर में काम करते हैं, कुछ में नहीं करते, कोई औरत घर पर ही काम करती है कोई हाट-बाज़ार करती है-आदि आदि।

'जैन्डर' है सामाजिक लिंग

लड़के-लड़की, औरत-मर्द से जुड़ी इन सामाजिक मान्यताओं को 'जैन्डर' या सामाजिक लिंग कहते हैं। सामाजिक लिंग या औरत और मर्द की परिभाषा समाज बनाते हैं। समाज ऐसे नियम बनाते हैं जैसे लड़की घर या जनाने में रहेगी, लड़का बाहर जायेगा। या लड़की को खाने और खेलने को कम मिलेगा, लड़के को ज़्यादा। लड़के को अच्छे स्कूल भेजा जाएगा ताकि वह बड़ा हो कर घर का धन्धा सम्भाल सके या अच्छी नौकरी पा सके। लड़की की पढ़ाई पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जाएगा।

ये सब सामाजिक लिंग भेद प्रकृति ने नहीं बनाए। प्रकृति तो लड़की और लड़का पैदा करती है, समाज उन्हें मर्द और औरत में बदल देता है। समाज की परिभाषाओं की वजह से लड़के और

लड़की के भेद बढ़ते चले जाते हैं और ऐसा लगने लगता है मानो लड़के और लड़की, औरत और मर्द की दुनिया ही अलग है।

भेदभाव समाज ने बनाए हैं

सामाजिक लिंग भेद ही लड़के-लड़की, औरत-मर्द में ग़ैर-बराबरी पैदा करता है। समाज (या हम सब जो समाज का हिस्सा है) कहता है पुरुष उत्तम या बेहतर है, स्त्री कमतर है, जो काम पुरुष करते हैं उनकी मज़दूरी ज़्यादा है, औरत के काम की कम या बिल्कुल नहीं। मर्द सत्तावान है, औरत सत्ताहीन है।

प्रकृति ग़ैर-बराबरी की बात नहीं करती। वह सिर्फ़ प्रजनन के लिए औरत और मर्द को अलग अंग देती है, उससे ज़्यादा कुछ नहीं। भेद-भाव, ऊंच-नीच, अलग तौर तरीक़े इन्सानों या समाज, यानि हम सब बनाते हैं अमीर-ग़रीब, ब्राह्मण-शूद्र, गोरे-काले, औरत-मर्द का फ़र्क प्रकृति ने नहीं, समाज ने बनाया है।

सच तो यह है कि हर इन्सान में स्त्री ओर पुरुष दोनों होते हैं, पर समाज लड़की के अन्दर छुपे पुरुषत्व को और लड़के के अन्दर छुपे स्त्रीत्व को उभरने नहीं देता। समाज स्त्री-पुरुष की समानताओं को उभारने की जगह उन के अन्तर पर ज़्यादा ज़ोर देता है और इसी वजह से स्त्री-पुरुष में फ़र्क बढ़ता रहा है, उनके रास्ते अलग-अलग होते गए हैं और असमानता की वजह से उनमें तनाव और द्वन्द भी बढ़ता गया है।

पितृसत्ता सामाजिक है: कुदरती नहीं

ज़्यादातर देशों में सामाजिक लिंग भेद पितृसत्तात्मक है—यानि वह पुरुष की सत्ता दर्शाता है और मर्दों

को अहमियत देता है। सामाजिक-लिंग भेद के औरतों के ख़िलाफ़ होने की वजह से लड़कियों पर अनेकों बन्धन होते हैं, उनके ख़िलाफ़ पक्षपात होता है, उन पर हिंसा होती है। इसी वजह से लड़कियां लड़कों की तरह आगे नहीं बढ़ पातीं, अपना हुनर नहीं निखार पातीं। एक ही घर में लड़के फलते-फूलते और लड़कियां कुम्हलाती नज़र आती हैं। उस लिंग भेद का बुरा असर सिर्फ़ लड़कियों पर ही नहीं उनके परिवार, समाज और पूरे देश पर पड़ता है। लड़कों पर भी कुछ खास काम, गुण और ज़िम्मेदारियां थोपी जाती हैं।

सामाजिक-लिंग या 'जैन्डर' इन्सानों का बनाया है। हम सब अगर चाहें तो उसे बदल सकते हैं, लड़के-लड़की, स्त्री-पुरुष की नई परिभाषाएं दे सकते हैं। हम एक ऐसा समाज बना सकते हैं जहां लड़की होने का मतलब कमतर, कमज़ोर होना नहीं है और लड़का होने का अर्थ क्रूर, हिंसात्मक होना नहीं है।

(क्रमशः पृष्ठ 13 पर)

'जैन्डर' का बवन्डर

(पृष्ठ 5 का शेष)

सच तो यह है कि हर लड़की और लड़का जो चाहे पहन सकता है, खेल सकता है, पढ़ सकता है, बन सकता है। लड़की होने से ही घर का काम करना, औरों की सेवा करना नहीं आ जाता। लड़का पैदा होने से ही निर्भयता, तेज़ दिमाग, ताक़त, आदि नहीं आ जाते। ये सब काम और गुण सीखने सिखाने से आते हैं। जिसकी जैसी परवरिश होगी वो वैसी बन सकती है।

हम चाहें तो ऐसा समाज बना सकते हैं जिनमें काम, गुण, ज़िम्मेदारियां, व्यवहार और हुनर किसी लिंग, जाति, रंग और वर्ग के आधार पर थोपे न जाएं। सब अपनी मर्ज़ी और स्वभाव के मुताबिक काम कर सकें, हुनर सीख सकें और व्यवहार कर सकें।

अब आया समझ में कि 'जैन्डर' कोई बवन्डर नहीं है। यह एक आसान सी और फ़ायदेमन्द अवधारणा है। इस अवधारणा की मदद से हम बहुत कुछ सीख और समझ सकते हैं और अगर चाहें तो बहुत कुछ बदल भी सकते हैं। □

हंसना, जीतना और भूल जाना

जुही जैन

खुलकर हंसना और इस हंसी में थोड़ी देर के लिए ही सही ज़िन्दगी के दुख दर्द से राहत ले पाएं इसी कोशिश में इण्डियन हेल्थ ऑर्गनाइजेशन की यह प्रतियोगिता आयोजित की गई।

कमातीपुरा की तंग गलियों से गुज़रने वाले राहगीरों को लगा उस इलाके में रहने वाली तमाम वेश्याएं पागल हो गई हैं। क्यों न लगे ऐसा। सब की सब खुशी से बेतहाशा हंस रही थीं, लगातार, बिना सांस रोके। पर यह कोई पागलपन नहीं था। यहां पर हंसने की एक प्रतियोगिता चल रही थी। इण्डियन हेल्थ ऑर्गनाइजेशन की पन्द्रहवीं जयंती के समारोह पर यह प्रतियोगिता आयोजित की गई थी।

उस दिन उस इलाके के सारे चकले, रंगबिरंगी पोशाकें पहने वहां रहने वाली औरतों की जीवन्त हंसी से गूंज रहे थे। ऐसा लग रहा था कि रोज़मर्रा की घुटन भरी ज़िंदगी से यह औरतें कुछ पल छीनकर लाई हों। अपने जीवन की कड़वी सच्चाई कुछ समय के लिए भूलना चाहती हों। इस दिन वहां काम करने वाली एक तेईस वर्षीय लड़की संगीता ने बताया "चकले की ज़िंदगी नर्क जैसी है। आज मैंने सीखा कि जीवन को सही मायने में कैसे जीया जाता है। जब सबसे लम्बे समय तक जोर से हंसने के लिए मुझे ईनाम मिला, तब वह मेरी ज़िंदगी का सबसे खुशगवार पल था। मैंने फैसला किया है, अब चाहे जो भी हो मैं हंसती रहूंगी, मायूस नहीं होऊंगी।"

इसी दिन कमातीपुरा में एक हंसने के क्लब की भी स्थापना की गई। इस इलाके में काम करने वाले एक डॉक्टर का कहना है—"औरतों की ज़िंदगी में खुलकर हंसने के मौके वैसे भी बहुत कम आते हैं। समाज उन्हें इसकी इज़ाजत नहीं देता। फिर यहां की औरतें तो पेशा करती हैं। इस तरह की

प्रतियोगिता आयोजित करने के पीछे हमारा मकसद है, हंसने का एक मौका देना। ये औरतें बरसों से शर्म और मायूसी के माहौल में जी रही हैं। इस तरह की प्रतियोगिता समय समय पर आयोजित करने से वह थोड़े समय के लिए ही चाहे, रोज़ाना के दुखः दर्द भूल सकेंगी। खुलकर हंसेंगी और थोड़ी देर के लिए ही सही ज़िन्दा हो जाएंगी।" □

साभार—"आई.एच.ओ. न्यूज़लेटर" अंक-3; जून 1997

छठा राष्ट्रीय नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन

सुहास कुमार

एक बार फिर हज़ारों की संख्या में महिलाएं इकट्ठा हुईं। अवसर था छठा राष्ट्रीय नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन, स्थान था रांची, बिहार, 28 से 30 दिसम्बर, तीन दिन रांची शहर खूब गुलज़ार रहा। महिलाएं गले मिलीं, बातचीत की, कुछ कही कुछ सुनी, मिलकर नाचा गाया, खुशियां मनाईं, गम सुनाकर मन हल्का किया। बहनचारा मज़बूत बनाया।

एसे 5 सम्मेलन पहले हो चुके हैं, 1980 में सबसे पहले बंबई में महिला समूहों ने मीटिंग की। 1984 में दूसरा सम्मेलन भी बंबई में हुआ। चौथा 1990 में कालीकट में तथा पांचवा 1994 में तिरुपति में हुआ। तबसे अब तक महिलाओं की भागीदारी बढ़ती ही रही है। एक के बाद एक मुद्दे जुड़ते गए। अब 3 दिन का समय भी कम पड़ता है। 1990 में ज़मीन से जुड़ी, गांव व बस्ती की महिलाओं की भागीदारी से आंदोलन में नई जान आई, इस बार भी तीन चौथाई महिलाएं दलित और आदिवासी थीं, एक दूसरे की बात समझे न समझें—दोस्ती तो बनी, समस्याएं हल न हो पाईं हो—नई ताक़त, नया जोश तो आया, इरादे और बुलंद हुए। सम्मेलन में 16 राज्यों के लगभग 350 महिला संगठनों ने भाग लिया। कुल लगभग 3,500 भागीदार थे। चर्चा के खास मुद्दे तीन थे।

1. विस्थापन और महिलाएं
2. महिलाओं पर बढ़ती हिंसा
3. राजसत्ता का महिला विरोधी रुख

विस्थापन और महिलाएं

आज देश में सरकार की गलत नीतियों से विकास के नाम पर तमाम लोगों को उनकी खेतिहर ज़मीन और जंगलों तथा चारागाहों से बेदखल किया जा रहा है। इससे लाखों लोग अपने बाप दादों की ज़मीन को सस्ते दामों पर बेचने को मजबूर हुए हैं। उन्हें जो मुआवज़ा मिला है उससे वे ज़मीन तो क्या फिर से कोई धंधा भी नहीं शुरू कर पा रहे हैं। उनके पास सर छुपाने को छत भी नहीं है। कुछ को तो वह थोड़ा मुआवजा भी नहीं मिला है। उनके पास रोज़गार भी नहीं है। गांव में आपसी मदद व भाई चारा मिलता था। अब कोई कहीं कोई कहीं भटक रहा है। इससे औरतों की ज़िंदगी तो बहुत ही उलट-पलट गई है।

सम्मेलन में भारी संख्या में आई आदिवासी और दलित औरतों ने आप बीती सुनाई। जंगल कट जाने से उन्हें शौच जाने तक की सुविधा नहीं है।

रात में जाना पड़ता है। कहीं-कहीं सुलभ शौचालय बने हैं लेकिन ज़्यादातर नाकाफ़ी हैं। आज खेती में लगी हज़ारों महिलाएं बेरोज़गार हो गई हैं। घर के काम का बोझ बढ़ गया है, पति रोज़गार की तलाश में शहर चले गए हैं। जंगलों से बांस व लकड़ी का सहारा था वह भी चला गया। बांस से डलिया वगैरह बनाती थीं। आज खाली बैठी हैं।

ज़मीन की बेदखली के साथ-साथ उनका सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पेशेवर विस्थापन भी हुआ है। नई नीतियों से राशन, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं सभी में कटौती हुई है।

महिलाओं पर बढ़ती हिंसा

महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा के मामले बढ़ते ही जा रहे हैं। तीन बड़े मुद्दों बलात्कार, दहेज-मृत्यु और डायन प्रथा पर चर्चा हुई। बलात्कार के मामले सरकार चलाती हैं। लोगों को मुकदमों की कोई जानकारी नहीं मिलती, एक लंबे अर्से बाद फैसला सुनाया जाता है तब तक लोग तो मामले को भूल ही जाते हैं। बच्ची जवान और जवान अधेड़ हो जाती है, कई बार बलात्कारी बेल पर छूट कर खुलेआम घूमते हैं।

आम तौर पर डाक्टरी जांच की रपट जो सुनवाई के लिए ज़रूरी है, नहीं मिलती। मामले की गुपचुप सुनवाई भी हल नहीं है। बलात्कार की शिकार महिला अकेली पड़ जाती है।

मामले की सुनवाई बहुत दिनों बाद होने से बलात्कारी को वह ठीक से पहचान भी नहीं पाती। महिलाओं के साथ छेड़छाड़ व घरों में मारपीट भी बढ़ ही रही है। हिंसा शारीरिक और मानसिक दोनों तरह की हो सकती है।

राजसत्ता का महिला विरोधी रुख

तीसरा मुद्दा राजसत्ता द्वार महिलाओं को सताया व दबाया जाना था। सरकार परिवार नियोजन के सही-गलत तरीके महिलाओं पर ज़बरदस्ती थोपती है। जल, जंगल, जमीन प्राकृतिक और सामाजिक संसाधनों तक उनको पहुंचने नहीं दिया जाता। उनकी मेहनत से कम मेहनताना उनको मिलता है। सरकार कई तरह की जोर ज़बरदस्ती भी करती है।

महिलाएं चाहती हैं कि पति-पुत्र शराब न पिएं, सरकार ठेके पर ठेके खोलती है ताकि कर से पैसा बटोरे। पुलिस के जुल्म महिलाओं पर कुछ और भी ज्यादा हैं।

आज यह समझना भी ज़रूरी है कि सरकार से भी बड़ी ताकतें हैं जो हम सबकी ज़िंदगी पर असर डाल रही हैं, वे ताकतें हैं बहुराष्ट्रीय कंपनियां, ये बड़ी-बड़ी कंपनियां हमारे और हमारी तरह के गरीब देशों पर आर्थिक कब्ज़ा जमा रही हैं। कर्ज़दार होने की वजह से हमारी सरकार चाहते हुए भी उन पर अब रोक नहीं लगा सकती।

बाज़ार में चीज़ों के दाम घटना और बढ़ना इन्हीं कंपनियों के हाथ में है। इनके आने से आज

बाज़ार और पैसा सबसे महत्वपूर्ण हो गया है। बाज़ार में चीज़ों की भरमार है पर हममें से कितने उन्हें खरीद सकते हैं। यही नहीं सरकार धीरे-धीरे गैर जवाबदेही का रुख़ अपना रही है। इन तीनों के अलावा चर्चा के और मुद्दे भी थे।

1. दलित महिलाओं की विशेष समस्याएं
2. आदिवासी महिलाओं की समस्याएं
3. मुस्लिम महिलाओं की समस्याएं
4. महिलाओं पर यौनिक हिंसा
5. नारी आंदोलन में अलग-अलग नज़रिए
6. राजनीति और सरकारी तथा अन्य नौकरियों में महिलाओं का 33 प्रतिशत आरक्षण
7. समलैंगिकता
8. एकल औरतें
9. महिलाओं के भूमि अधिकार आदि।

सम्मेलन का कार्यक्रम

28 दिसम्बर 1997 को सम्मेलन की शुरूआत सुबह दस बजे रांची के नगर भवन में हुई। तमिलनाडू, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तरी पूर्वी राज्य (शिलांग, मनीपुर), धर्मशाला से तिब्बती महिला भागीदार वहां आईं। बिहार के काफ़ी दूर दराज़ वाले इलाकों की महिलाएं बड़ी संख्या में आईं। भाषणों, गीतों, नाटकों और नारों की गूंज रही। हर दिन शाम से देर रात गए गाना, नाचना, नाटक वगैरह सांस्कृतिक कार्यक्रम चलते थे चूंकि भागीदार सिर्फ़ महिलाएं थीं, बिना हिचक गाना बजाना नाचना चला। आंदोलन से जुड़े कई नए पुराने गाने सुनने को मिले। इन सबसे मनोरंजन तो हुआ साथ ही मुद्दों की समझ भी बढ़ी।

सम्मेलन में पास हुए प्रस्ताव व मांगें विस्थापन सत्र

- विस्थापन कम से कम या नहीं ही होना चाहिए।
- केन्द्र और राज्य सरकारें ठोस विस्थापन नीति बनाएं।
- ज़मीन सरकार लोगों की दिक्कतें समझ कर ले।
- सबको पूरी जानकारी दी जानी चाहिए। अचानक ही ज़मीन से बेदखल नहीं किया जाना चाहिए।
- आम जन (जिसमें, महिलाएं भी शामिल हैं) के मानव अधिकारों को ध्यान में रखा जाए।

महिला संगठनों को दलित, आदिवासी व गांवों की महिलाओं की लड़ाई में उनकी मदद करनी है। आज उनके सामने ज़िंदगी मौत का सवाल है। उनके मुद्दों को हमें प्राथमिकता देनी होगी।

महिलाओं के खिलाफ हिंसा-सत्र

- बलात्कार क़ानून में ज़रूरी संशोधन किए जाएं। बलात्कार में बच्चियों वगैरह के साथ बलात्कार के तौर तरीकों को भी शामिल किया जाए। बलात्कार साबित करने का ज़िम्मा बलात्कारी पर डाला जाए। बलात्कार मामले की सुनवाई

और फैसला जल्दी हो। क़ानूनन समय सीमा तय की जाए।

- पुलिस व जजों को इस मामले में ज़्यादा हमदर्दी का रवैया अपनाने के लिए खास तरीके अपनाए जाएं।
- कानूनी बदलाव एक हथियार है। बदलाव के लिए क़ानून के साथ-साथ सोच में भी बदलाव लाना ज़रूरी है।
- क़ानूनी सज़ा के साथ-साथ बलात्कारी को सामाजिक सज़ा भी मिलनी चाहिए।

राजसत्ता का महिला विरोधी रुख

- सरकार की जनसंख्या नीति की कड़ी निंदा की गई और यह तय किया गया कि हम उसका जमकर विरोध करें।
- एक नई स्वास्थ्य नीति बनाई जाए जिसमें महिलाओं के पूरे स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाए। उन्हें सिर्फ बच्चा जनने की मशीन न माना जाए।
- खतरनाक और लंबे अर्से तक असर वाले गर्भ निरोधकों पर फौरन रोक लगाई जाए।
- काश्मीर, आंध्र प्रदेश, उत्तरी पूर्वी राज्यों व बिहार तथा जहां कहीं और भी हो रहा है सरकारी दमन की हम घोर निंदा करते हैं।
- रणबीर सेना और जो राजनैतिक समूह उन्हें बढ़ावा दे रहे हैं उनको तुरंत सज़ा मिलनी चाहिए।
- टाडा, नासा जैसे भयंकर कानूनों को हटाया जाए।

रणनीति

- महिला समूहों का एक नेटवर्क बनाया जाना बहुत जरूरी है।
- 8 मार्च 98, महिला दिवस में राजसत्ता द्वारा दमन को मुख्य मुद्दा बनाया जाए।
- 8 मार्च 98, को शराब विरोधी दिवस के रूप में मनाया जाए।
- हम भावी लोक सभा चुनावों में यह मुद्दा बनाएं कि हम उन्हीं को वोट देंगे जो महिला आरक्षण बिल पास करने में पूरी मदद देंगे।
- 26 जनवरी से 4 फरवरी के बीच महिला संगठन आरक्षण बिल संबंधी कार्यक्रम करें।
- बिहार के महिला आयोग में अध्यक्ष व सभी सदस्य पुरुष हैं। हम उसका बायकाट करेंगे।

सम्मेलन में आई महिलाओं ने एकजुटता दिखाई, फिर मिलने का वादा किया, नई ताक़त व नए इरादों को लेकर वे वापस गईं। □

ज़िन्दगी कुछ और नहीं
ठान लो तो हथियार है
मांग लो तो अधिकार है।

महिलाएं, समाज और मस्ज़िद

बुरहानुद्दीन शकरूवाला

पिछले दिनों केरल और लखनऊ में कुछ स्थानों पर महिलाओं ने मस्जिदों में पुरूषों के साथ आकर नमाज़ अदा की। अब तक मस्जिदों में उनके प्रवेश पर पाबंदी थी। जमात में आकर नमाज़ पढ़ने के इस फैसले का विरोध भी हुआ है, पर अभी तो महिलाएं इस नए हक की रक्षा में मैदान में उतर आई हैं। केरल से श्री बुरहानुद्दीन शकरूवाला की रिपोर्ट इस प्रसंग में नया प्रकाश डालती है।

सबसे पहले उठकर फज़र की नमाज़ अदा करके पूरे जहां की खैरियत की दुआ मांगती हूं। तब फिर आंगन बुहारती हूं।

केरल की मुस्लिम औरतें उन उलेमाओं के खिलाफ मैदान में उतर आई हैं, जो इनके मस्जिद में नमाज अदा करने के खिलाफ हैं। ये औरतें इसको अपना इस्लामी और मजहबी हक करार देती हैं। आश्चर्य की बात यह है कि तिरुवनंतपुरम में कट्टरपंथी मुस्लिम नौजवानों ने पलायम मस्जिद तक मार्च कर मस्जिद के इमाम पी.के.के. अहमद कटी के इस फैसले का विरोध किया कि औरतें भी नमाज जमात से मस्जिद में अदा कर सकती हैं। इन दिनों केरल में मस्जिदों में महिलाओं की नमाज जायज़ है या नाजायज इस विषय पर बहस चल पड़ी है। केरल के आलीम दीन ने मस्जिद में जाकर महिलाओं को नमाज अदा करने की इजाजत देकर पूरे देश, विशेषकर केरल में एक नई बहस को जन्म दे दिया है। इस बहस में मुसलमान और मुस्लिम उलेमा दो गुटों में बंट गए हैं।

करून औला के तवारिख के मुताबिक औरतें मस्जिद में आकर नमाज अदा किया करती थीं। पहली सफ (कतार) में मर्द, दूसरी में बच्चे और बच्चों के पीछे औरतें नमाज अदा करती थीं। शरीयते इस्लाम की रूह से औरतें मस्जिद में नमाज अदा कर सकती हैं, मगर भारत में मस्जिदों में सिर्फ पुरुष ही नमाज अदा करते हैं। महिलाएं घरों में ही नमाज पढ़ती हैं।

भेदभाव क्यों?

इधर अनेक मुस्लिम देशों में स्त्रियां मस्जिदों में नमाज अदा करती हैं। इन मस्जिदों में महिलाओं के नमाज पढ़ने की व्यवस्था अलग से होती है। वैसे हमारे देश में भी दाऊदी बोहरा समाज की महिलाएं मस्जिदों में नमाज अदा करती हैं। उर्दू 'नई दुनिया' के संवाददाता एम. साजिद ने

इस विषय पर दिल्ली के विभिन्न मुस्लिम उलेमाओं के विचार लिए। जामा मस्जिद फतेहपुरी के नायब शाही इमाम मौलाना मोअज्जम अहमद ने कहा कि मस्जिदों में औरतों का नमाज अदा करने जाना तो जायज है, मगर जहां तक हिंदुस्तान का सवाल है यहां इसका कोई रिवाज नहीं रहा है। यहां की मस्जिदों में औरतों के नमाज की कोई व्यवस्था नहीं है। करून औला में तो हर नमाजी कामकाज छोड़कर मस्जिद में नमाज पढ़ने जाता था और नमाज खड़ी होने तक तमाम मर्द नमाजी आगे जमा हो जाते थे। इनके बाद बच्चे और फिर सबसे आखिरी में औरतें खड़ी होती थीं। इस तरह उस समय कोई खलल की सूरत बाकी नहीं रहती थी मगर इस जमाने में, विशेषकर हिंदुस्तानी समाज में, वह माहौल पैदा करना नामुमकिन है। यहां अक्सर मर्द नमाजी उस वक्त आते हैं, जब नमाज खड़ी हो जाती है, एक दो रक्आत हो जाती है या पूरी नमाज समाप्ति के करीब होती है। मौलाना की राय है कि हिंदुस्तान में औरतों का मस्जिद में आकर जमात से नमाज अदा करना समाजी ऐतबार से मुनासिब नहीं है।

इदारा अमवार मस्जिद के सरबराह मौलाना अब्दुल्ला तारिक इस सिलसिले में कहते हैं कि नबी (स.स.) के इरशादात से औरतों के लिए मस्जिद की नमाज जमात से शिरकत की अनुमति तो है मगर हदिस में यह भी दर्ज है कि औरतों के लिए मस्जिद के मुकाबले घर ही बेहतर है। कुल हिंद तजीम-आईमा मस्जिद के सदर मौलाना जमिल अहमद ईल्यासी के मुताबिक हिंदुस्तान में ऐसा कोई रिवाज नहीं है। उन्होंने महिलाओं के समर्थकों से पूछा कि आखिर वह नजर, माहौल व नीयत कहां से आएगी, जो खानाए कावा में होती है।

संघर्ष का ऐलान

बहरहाल केरल की मुस्लिम औरतें उन उलेमाओं के खिलाफ मैदान में उतर आई हैं, जो इनके मस्जिद में नमाज अदा करने के खिलाफ हैं। ये औरतें इसको अपना इस्लामी और मजहबी हक करार देती हैं। आश्चर्य की बात यह है कि तिरुवनंतपुरम में कट्टरपंथी मुस्लिम नौजवानों ने पलायम मस्जिद तक मार्च कर मस्जिद के इमाम पी.के.के. अहमद कटी के इस फैसले का विरोध किया कि महिलाएं भी नमाज जमात से मस्जिद में अदा कर सकती हैं। पलायम मस्जिद के इमाम अहमद कटी ने अपने फैसले में पैगंबरे इस्लाम की जानिब से दी गई इजाजत का हवाला दिया है और कहा है कि मक्का और मदीना में औरतें नमाज जमात से मस्जिदों में अदा करती हैं। अनेक अन्य खाड़ी देशों में भी ऐसा ही होता है। मौलना अहमद कटी के इस फैसले से कट्टरपंथी औरतें भी नाराज हैं, जबकि तरक्की पसंद औरतें इसके समर्थन में मैदान में उतर आई हैं तथा उन्होंने इस मामले को अपने हाथ

में लेने का फैसला कर लिया है।

मुस्लिम लीग महिला विंग तिरूवनंतपुरम की सदर और सामाजिक कार्यकर्ता सुश्री कमरून्निसा ने कहा है कि मस्जिद में नमाज पढ़ना हमारा इस्लामी हक है और इससे हमें मेहरूम रखना गैर इस्लामी कार्य है। करेल की एक घरेलू मुस्लिम का कहना है कि यह अजीब बात है कि औरतों को फिल्म और सर्कस देखने के लिए बाहर जाने की इजाजत है मगर मस्जिदों में जाने की नहीं।

मालापुरम की मशहूर वकील सुश्री के.पी. मरयामा कहती हैं कि इस सिलसिले में इस्लामिक विद्वान ही कोई बेहतर फैसला दे सकते है। इनका कहना है कि बेहतर यही होगा कि मुफ्तिए कराम पर इस समस्या का समाधान छोड़ दिया जाए। केरल के जस्टिस पी.के. शमसुद्दीन का कहना है कि यह मुस्लिम औरतों का बुनियादी हक है, इसलिए इस मुद्दे पर विवाद खड़ा करना गैर जरूरी है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के पूर्व उपकुलपति प्रो. वाहाऊद्दीन इसी राय के हामी हैं।

...दिल्ली के बहुत से उलेमाओं और मस्जिदों के इमामों की राय है कि अगर महिलाएं मस्जिद में आकर नमाज अदा करना चाहती हैं, तो पहले मस्जिदों का विस्तार करना चाहिए, क्योंकि वर्तमान में मस्जिदें छोटी हैं। इसके अलावा दीगर उलेमाओं की राय है कि औरतों को मस्जिदों में अवश्य नमाज अदा करना चाहिए। मगर पहले नमाज और माहौल को इतना पाकीजा बना दिया जाए कि औरत की 'हुरमत' सलामत रहे। □

एक अनकही कहानी

ऊषा

सामग्री– कुछ मिट्टी के बर्तन, हाथ का बुना कपड़ा, एक बड़ी टोकरी में अनाज, दो सुन्दर ओढ़निया, कुछ जेवर, एक लम्बी रस्सी, चार दफ्ती पर इ-न-सा-न लिखा हुआ।

वस्त्र– 2 पुरुष– धोती कुरता, 2 स्त्री– सादी साड़ी } दोनों के ऊपर घुटने तक का बिना बाहों का चोगा जो केवल सर डालने की जगह पर कटा हो।

2 सूत्रधार– एक बच्ची, एक बूढ़ी

स्थानः किसी भी नुक्कड़, मीटिंग या कार्यशाला में समतल भूमि पर

दृश्यः चार पात्र उत्तर, दक्षिण, पूरब, पच्छिम की ओर मुंह कर के खड़े हैं। पात्र कमेन्ट्र के संग अपने हाव भाव, मुद्राओं द्वारा मूल विषय को दर्शाते जाएंगे। टोकरी उनके बीच में।

•:————————:•

एक बड़ी सी वादी में वह भी थी और वह भी था।

प्रश्न वे कौन थे?

उत्तर उनका नाम था इन्सान। (सीधी लाइन में दफ्ती पकड़े)

प्रश्न वे क्या करते थे?

उत्तर वे शिकार खेलते, लकड़ी इकट्ठा कर आग जलाते, अपने जानवरों के संग चरागाहों में घूमते। पेड़ों से फल तोड़कर खाते, संग नहाते, खेलते और तो और बराबरी से आपस में और दूसरों से लड़ते भिड़ते और प्यार भी करते, क्योंकि वह एक बड़ा परिवार था।

प्रश्न एक परिवार? कैसे?

उत्तर क्योंकि बच्चे सब की थीं अमानत, मेरी बीवी तेरी बीवी, मेरा मियां-तेरा पति का कोई सवाल ही न था। सब संग में बराबरी के रिश्तों से रहते, क्योंकि आखिर सब इन्सान थे। एक बड़ा परिवार था वह।

प्रश्न फिर क्या हुआ?

उत्तर औरत की सूझ-बूझ से जमीन फल, फूल, अनाज, साग सब्जी देने लगी।

औरत की ही सूझ-बूझ से जमीन की बिखरी मिट्टी बदलने लगी बरतनों में।

औरत की सूझ-बूझ से खेतों में लहलहाती कपास बदलने लगी कपड़ों में।

बस यहीं से पासा पलटा और औरत की आई शामत।

प्रश्न इस में क्या बुराई थी। यह सब तो अच्छा ही हो रहा था?

उत्तर बुराई बस, इतनी हुई, कि इन्सान के बन गए दो फिरके-दो भाग। एक कहलाया जाने लगा औरत और दूसरा आदमी।

प्रश्न पर इससे पासा कैसे पलटा?

उत्तर आदमी डर गया। उसने अपने जिस्म की ताकत से जमीनें तो घेर लीं ताकि उस पर खेती करे, पर काम करने के लिए उसे औरत का मुंह देखना पड़ता। किसी भी बच्चे को वह अपना बच्चा नहीं कह सकता था। सारे बच्चे औरतों के थे।

प्रश्न फिर क्या हुआ?

उत्तर फिर होता क्या इसी डर से उसने औरत की कोख पर हक जमाने की सोची और अपने राज्य के विस्तार की सोची।

प्रश्न तो फिर औरत का क्या हुआ?

उत्तर होता क्या, समय के साथ वह धीरे-धीरे वादियों और मैदानों से बाड़ों के अन्दर आ गई। (यहां रस्सी का प्रयोग किया जा सकता है। बाड़ों से आंगन में, आंगन से चारदीवारों के भीतर और चारदिवारियों से बन्द कोठरियों में। (औरत एक के बाद दूसरी सरहद को लांघती एक छोटे घेरे में बैठ जाती है। वह एक कीमती मशीन की तरह सिर्फ बच्चे पैदा करने के लिए इस्तेमाल की जाने लगी।

(ऊपर का चोगा उतर गया। घर के काम करती हुई)

प्रश्न इस बीच आदमी क्या करता रहा?

उत्तर आदमी सदियों में धीरे-धीरे इन दीवारों को मजबूत बनाता गया और फिर एक खूबसूरत जाल बुनकर औरत को उसमें जकड़ लिया। उसने कहा–

तू नाजुक है तुझे घर में बैठना चाहिए
तू जननी है तेरी देखभाल होनी चाहिए
तू देवी है तेरी पूजा होनी चाहिए
तू सुन्दर है तुझे आभूषणों से लदा होना चाहिए।

(इस समय तक औरत चूड़ी, माला चमकदार दुपट्टे में लिपटी उकडू होकर कोने में बैठी है। देखते ही देखते खुली वादियों में दौड़ती भागती कन्धे से कन्धा मिलाकर उछलती कूदती औरत–बन्द कमरों में घुटने लगी, सिसकने लगी।)

प्रश्न अब क्या होगा?

उत्तर अब, अब उसे अपने सामने बन्द किवाड़ों को तोड़ना होगा। कमरों से, बाहर आंगन में आना होगा। अपने आंगन की दीवारों को तोड़ना होगा। फिर सबको एक दूसरे का हाथ पकड़कर दोबारा वादियों और मैदानों में निकलना होगा। एक दूसरे के आंसू पोंछकर खिलखिलाकर हंसना होगा ताकि वादी फिर इन्सान की आवाज से गूंज उठे।

(आस-पास बैठी बहनें भी इसमें हाथ पकड़कर गाना गा सकती हैं।) □

कुछ खोने से कुछ पाने तक

सुनीता ठाकुर

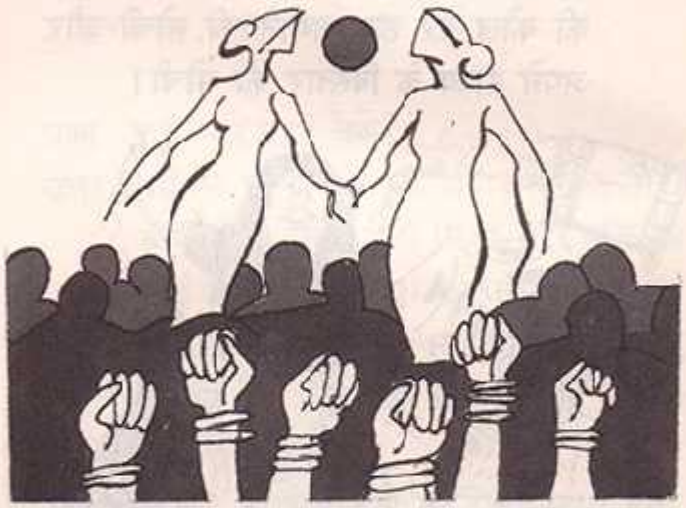

दहलीज़ के बाहर
रखा है कदम
पहुंचे चूल्हे से
चौखट तक हम
रोके रुकेंगे नहीं हम
अब तो ये
ठान चुके हम।

अस्तित्व की लड़ाई नारी जीवन का ध्रुव सत्य है। नया नहीं बहुत पुराना–एक अहिल्या थी बिना कारण बुत बना दी गई। हिम्मत थी सो अपनी साधना अपने तप से त्राण पा गई। शबरी, कुबड़ी, राधा, सीता, मीरा, सावित्री, लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई नामों की कमी नहीं–हर नाम के साथ अपनी पहचान की लड़ाई अपने वज़ूद का संघर्ष-सबने कहीं न कहीं बंधनों को तोड़ा, नकारा, अपने नियम अपने कानूनों पर अपना जीवन स्तम्भ खड़ा किया। यह स्तम्भ अकेला नहीं था–इसकी छाया में अनगिनत छायाओं ने आसरा पाया, मजबूती पाई और आने वाली पीढ़ियों ने प्रेरणा ली।

अकेले विश्वास की पहल

इनके साथ कोई नहीं था–पूरा घर परिवार समाज सब एक तरफ और अकेले खुद को पहचानने, पाने और अपनी मर्जी से अपनी तरह जीने की ललक लिए ये हमारी पूर्वजाएं लड़ती रहीं–इनमें निराशा नहीं थी। विश्वास था कि ये जीतेंगी। इनकी लड़ाई बेकार नहीं जाएगी। मौन रहकर कुछ पाया नहीं जा सकता। ये समझ गई देवी बनना, त्याग, दया, ममता की देवी बनने से पहले एक औरत की तरह जीने की जरूरत है। इन्होंने अपनी भीतरी आवाज को पहचाना और उसे स्वीकार किया। चुप रहना कोई हल नहीं–जो जितना चुप है उतना ही दुःखी, उतना ही पीड़ित–चुप रहो तो लोग दबाते हैं–पलट कर दांत गुर्रा दो तो सभी भय खा जाएंगे–सामने वाले में भी दम है। लिहाजा बदला सब, दिल दिमाग तो मर्दों के समान ही उसके पास भी है न–सो कैसे न

बदलता-बदला और हमने पाया कि सारा आकाश हमारा है। सारी धरती हमारी ही बाट जोह रही थी। हाय हमने ही अपनी बाहें क्यों न खोलीं। औरतें जागीं तो औरों को भी जगाने लगीं—जिसके पांव बिवाई फटी थी वही यह दर्द जान सकती थी न—मर्दों के समाज में कौन उन्हें पूछता-कौन उनका दर्द जानता सो यह अकेला संघर्ष नहीं था—बहन ने बहन की बांह थामी—अपनी आंखों से देखा। सच उसे भी समझाया और तब एक नहीं हजार-हजार आंखें एक साथ शर्म के पर्दे से झांक उठीं उनमें सच और आत्मविश्वास की झलक थी। हजारों हाथ मुट्ठियों में तन गए। इनमें निश्चय था, विरोध था और था कुछ कर जाने का वादा—*तोड़-तोड़कर बन्धनों को देखो बहनें आती हैं*—के सुरमय गीत गूंज उठे। आकांक्षाओं के पर लगाकर हम उड़ चले अनन्त आकाश में जहां हमारी कल्पनाएं थीं और हम। अब पिंजरों में बंधकर भला कौन रह सकता था—सो बंधन टूटे। देहरी के बाहर का संसार हमारा है—हमने जाना। मर्दों का धर्म, उनका समाज, उनकी मर्यादाएं भला ये क्यों स्वीकार पातीं। नए-नए नाम, नई-नई परिभाषाओं में हमें बांधा जाने लगा, लेकिन सफ़र रुक थोड़े ही सकता था।

परम्परा की थाह लेना आसान नहीं, लेकिन लड़ाइयों का यह सफ़र हमारा जो इतिहास देख पाया वह आधी सदी का तो है ही। ऐसा कौन सा संघर्ष था जब औरत साथ नहीं थी— देवासुर संग्राम हुआ तो अकेली कैकेयी की कनिष्ठा (छोटी उंगली) ने दशरथ के पूरे हारे हुए पौरुष को सम्बल दिया। सत्यवान के खोए प्राण सावित्री यमराज तक से छीन लाई—यह थी नारी शक्ति—बड़ी विडम्बना थी कि उन्होंने हमें देवी बना दिया, पर एक औरत की तरह जीने का हक नहीं दिया। देवत्व के मोह में कभी अपनी तरह जी न सके हम। आपस में ही लड़ते रहे—तू बड़ी कि मैं और शासन करता रहा हमारा ही पैदा किया अंश हमीं पर।

आधी सदी क्या जन्मों बीत गए इस संघर्ष में—लगता है जैसे एक नहीं हजार हजार अम्बाएं बार बार जन्म लेकर हजारों भीष्मों के खिलाफ़ जीवन का महाभारत लड़ रही हैं। हाथ से हाथ जोड़कर संगठन बनाए—एक के बाद एक अनेक संगठन, अनेक संस्थाएं अनेकानेक आंदोलन धरने, मार्च, सेमिनार, सभाएं समाज में जितना-जितना अन्याय बढ़ा—हमारा विरोध उतना-उतना बढ़ता गया—एक आग दबी थी—इस भड़की हुई आग में उनका अन्याय अत्याचार का काम करता रहा और आज इस आग की तपिश में समाज भय खा गया तो कौन हैरानी—हमें खुशी हैं कि हमारा जलना व्यर्थ नहीं गया। इस आग में समाज का पाप भी गला है—आंकड़ों में बात करना फ़िजूल है क्योंकि जब दिल-भावनाएं बदलती हैं तो कौन समय, अंकों के आंकड़े उसे नाप सकते हैं। □

धुंध ही धुंध

डॉ. शकुन्तला कालरा

यह कैसा घर है?
बहु मंजिला/आलीशान है
आंगन है/दालान है
उगता है सूरज, लेकिन–
नहीं कोना धूप का
थोड़ा ताप सकूं।
है दरख्त भी हरा-भरा
लेकिन वहां छांव नहीं
थोड़ा सुस्ता सकूं।
न कोई आकाश/न टुकड़ा बादल का
न रिमझिम फुहार–
थोड़ा भीग सकूं।
न कोई मौसम न बहार
न ऐसा गीत
मुखड़ा ही बोल सकूं।
न कोई संगी
न मीत
मन को खोल सकूं।

यह कैसा घर है?
जहां किसी के लिए
कहीं/कोई जगह नहीं
न घर के भीतर
न मन के भीतर
होने में न होने का
अहसास;
जहां धुंध ही धुंध फैली है
घर के भीतर
बाहर।
अंग बन गए हैं सब उसके
कमरे/आंगन
छत/दीवार।
कैसे ढूंढूं? कहां ढूंढूं?
दीखता नहीं–
इस बंद घर का
एक भी तो
खुला द्वार

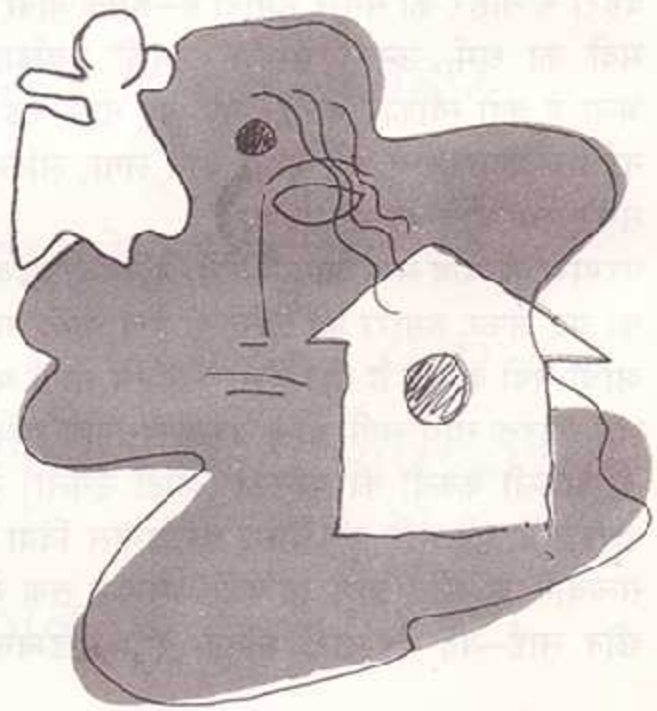

एक गीत

सफदर हाश्मी

खेत में करती नलाई और गुड़ाई है
ये लहराती फसल मर्दों के संग उसने उगाई है
वो बच्चे पालती है, साथ में रोटी कमाती है
कड़ी मेहनत के चार पैसे घर में लाती है

वो पत्थर तोड़ती है, धूप में सड़कें बनाती है
गगनचुम्बी इमारत नींव से ऊपर उठाती है
काम करती है मिलों में, मशीनें भी चलाती है,
वो सब्जी बेचने को ठोकरें दर-दर की खाती है।

औरतें उठी नहीं तो जुल्म बढ़ता जाएगा
जुल्म करनेवाला सीनाजोर बनता जाएगा।
देखो इन महिलाओं को जो आ गई हैं सामने—
इनके संग मिल जाओ तो सैलाब रुक न पाएगा।

दिल में जो डर का किला है, तोड़ दो अंदर से तुम
एक ही धक्के में अपने आप यह ढह जाएगा
आओ मिलकर हम बढ़ें, अधिकार अपने छीन लें,
काफिला अब चल पड़ा है, अब न रोका जाएगा।

(दिवराला सती कांड से संबद्ध 'द बर्निंग एम्बर्स' नामक डाक्यूमेंटरी फिल्म के लिए लिखा गया गीत)

आशीष

दुष्यंत कुमार

जा तेरे स्वप्न बड़े हों
भावना की गोद से उतरकर
जल्द पृथ्वी पर चलना सीखें
चांद-तारों सी अप्राप्य सच्चाईयों के लिए
रूठना मचलना सीखें
हंसे
मुस्कुराएं
हर दिए की रोशनी देखकर ललियाएं
उंगली जलाएं
अपने पांवों पर खड़े हों
जा,
तेरे स्वप्न बड़े हों।

नुक्कड़-नुक्कड़, आंगन-आंगन

सुनीता ठाकुर

महिला आन्दोलनों ने अपने अभियान में नुक्कड़ नाटकों, प्रदर्शनियों, पोस्टर, पर्चे आदि का बड़ी रचनात्मकता के साथ प्रयोग किया है। ये सभी माध्यम आम-प्रचार-माध्यमों से अलग होते हैं। इनमें विज्ञापन, चमकदमक न होकर सीधी-सरल भाषा में सीधे-सादे ढंग से नयी सोच, नए रास्तों की संभावनाएं लोगों तक पहुंचाई जा सकती हैं।

एक इतिहास

समय-समय पर समाज में औरतें की समस्याओं को लेकर बराबर नुक्कड़ नाटक हुए हैं। अस्सी के दशक में दहेज की समस्या एकाएक विकराल रूप लेकर सामने आई और आज तक है। उन्हीं दिनों 'ओम स्वाहा' नाम से एक नुक्कड़ नाटक स्त्री संघर्ष, सहेली व अन्य कई महिला समूहों द्वारा खेला गया। यह नाटक शादी ब्याह के नाम पर लड़के-लड़कियों के व्यापार पर करारा व्यंग्य करता है। इस तरह के नाटकों द्वारा इस समस्या को राष्ट्र-स्तर पर एक मुद्दे का रूप दिया गया और उसके खिलाफ़ बड़े पैमाने पर ज़हद शुरू की गई। अभी हाल ही में 8 मार्च के मौके पर दो छोटे-छोटे नुक्कड़ नाटक देखने का मौका मिला। दोनों का विषय था—यौन हिंसा। दोनों ही नाटकों में लड़कियों और औरतों पर लगातार बढ़ती यौन हिंसा के खिलाफ़ पुरजोर आवाज उठाई गई।

पहला नाटक था सबला संघ द्वारा पेश किया गया—'डर'। बाहर ही नहीं घर में अपने खास रिश्तों में भी लड़कियां आज सुरक्षित नहीं हैं। चाचा, मामा, ताऊ, पड़ोसी, भाई या उसका दोसत और यहं तक कि पिता भी कब उसे अपनी वासना का शिकार बना लेगा वह नहीं जानती। इसी डर की पीड़ा और घुटन को बड़े सुन्दर ढंग से छोटी-छोटी सबलाओं ने पेश किया।

दूसरा नाटक 'जागोरी' समूह द्वारा पेश किया गया था। मैं चुप नहीं रहूंगी नाम से यह नाटक रेलगाड़ियों में औरतों और लड़कियों पर होने वाली यौन हिंसा (अश्लील गाने, फब्तियां, इशारे, अश्लील चीजें दिखाना, बातें करना आदि) के खिलाफ़ औरतों को आवाज़ उठाने की प्रेरणा देता है।

एक खास पहचान

इनके लिए किसी विशेष मंच, साज-सज्जा की जरूरत नहीं होती। संवाद, संगीत-गीत और नृत्य सभी एक दूसरे में गूंथ दिए जाते हैं। इनके जबरदस्त हुनर से काफ़ी कुछ सीखा जा सकता है। ये नाटक स्वयं लोगों तक पहुंचते हैं—कहीं भी

(क्रमशः पृष्ठ 25 पर)

नुक्कड़-नुक्कड़... — (पृष्ठ 20 का शेष)

सड़क पर या मैदान में या फिर खाली जमीन या गली के नुक्कड़ पर ही सही—कोई भी ऐसी जगह जहां लोग इकट्ठे हो सकें—इनका मंच बन जाती है। दर्शकों के साथ इन नाटकों का सीधा सम्बन्ध होता है और दर्शक एक भागीदार की तरह भी कभी-कभी उसमें शामिल होते हैं तो अभिनेता और दर्शकों के बीच एक अटूट रिश्ता कायम करते हैं ये नाटक।

नुक्कड़ नाटकों का अपना एक सौन्दर्य बोध होता है। कोई भी माध्यम के प्रति बेईमान नहीं हो सकता केवल नारे लगाने या कथ्य को रूखे फीके ढंग से पेश करने पर कोई भी उसका कायल नहीं होता। इसके अलावा कभी-कभी उनके अपने अनुभव हमसे कहीं ज्यादा गहरे होते हैं इसलिए उनमें नयापन, ठोस बातें-अच्छी पेशकश और दृढ़-विश्वास होना चाहिए। □

उमा ने फैसला किया

जुही

आइए आज हम आपको उमा से मिलवाते हैं। बहुत बहादुर लड़की है। उमा की उम्र है चौदह साल। उड़ीसा प्रदेश का नाम आपने सुना होगा। उड़ीसा के एक ज़िले के एक छोटे से गांव पलवल में रहती है।

उमा आदिवासी है। मज़दूरी करती है। उसकी मां भी पत्थर तोड़ने का काम करती है। बाप पास की मिल में मैकेनिक है। उमा की एक बड़ी बहन है शन्नो। शन्नो बचपन से ही अपाहिज है। उसके दोनों पैर खराब हैं। व्हील-चेयर से ही चल फिर सकती है। उमा शन्नो को बहुत प्यार करती है। उसकी देखभाल करती है। उसे खुश रखने की पूरी-पूरी कोशिश करती है।

इस परिवार की दिनचर्या बड़ी कठिन है। बाप-मां और उमा सुबह घर से निकल जाते हैं। दिन ढले घर वापस आते हैं। बाप की छुट्टी दोपहर को ही हो जाती है इसलिए वह घर जल्दी आ जाता है।

कुछ दिनों से उमा को लगा कि शन्नो कुछ डरी सहमी सी रहती है। पहले वह खूब हंसती-बोलती थी। अब अचानक गुम-सुम सी हो गई है। उमा को यह अजीब लगा। मां को बताया। मां ने बात टाल दी। बोली, बेचारी दिन भर घर में रहती है। चल-फिर नहीं सकती। तो उदास हो रहती है। बात आई गई हो गई।

हादसे की जानकारी

कुछ समय बीता। एक दिन दोपहर के समय उमा की तबियत खराब हो गई। जब काम नहीं किया गया तो उमा ठेकेदार के पास गई। ठेकेदार अच्छा था। उसने उमा को छुट्टी दे दी। उमा घर आ गई। घर का दरवाजा खुला देख उमा हैरान हुई। खैर अंदर के कमरे की तरफ बढ़ी। चौखट पर पैर रखा ही था कि उसकी चीख निकल गई। देखा तो उसका बाप शन्नो का बलात्कार कर रहा था। शन्नो का मुंह और हाथ-पैर रस्सी से बंधे थे। शन्नो बेसुध पड़ी थी।

उमा को देखते ही बाप सहम गया। फिर कूदकर उसे भी पकड़ लिया। उसे डराया-धमकाया कि अगर उसने किसी से कुछ कहा तो उसकी मां और शन्नो को जान से मार डालेगा। आखिर उमा भी बच्ची थी, सहम गई। बाप यह कहकर बाहर चला गया।

उमा ने शन्नो के हाथ-पैर खोले। उसके मुंह पर छींटे मारे। होश आते ही शन्नो उमा से लिपटकर

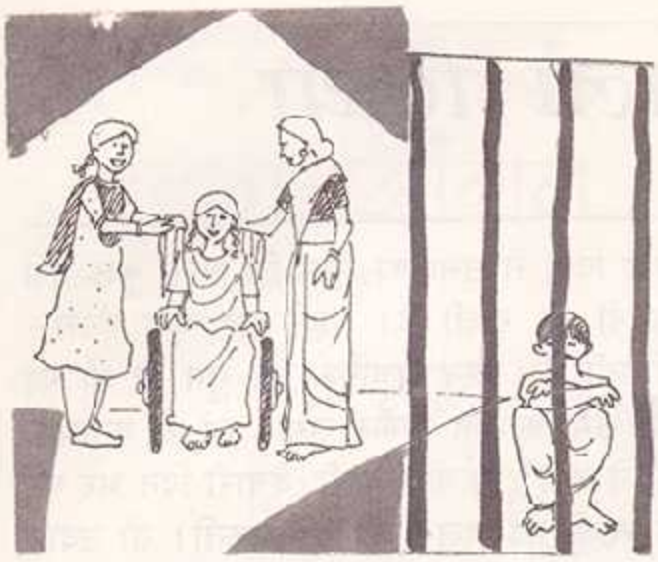

बिलख पड़ी। उसने बताया कि लगभग तीन महीने से उसका बाप उसके साथ बलात्कार कर रहा था। उसने शन्नो को भी धमकी दी कि अगर उसने अपना मुंह खोला तो उमा और मां को ज़हर दे देगा। फिर शन्नो को बचाने वाला कोई भी नहीं रहेगा। कभी-कभी बाप का एक आध दोस्त भी घर आता था। शन्नो के ऊपर बलात्कार करता। बाप को पैसे देता। इसलिए शन्नो घुट रही थी।

उमा की समझदारी

उमा से शन्नो की हालत देखी नहीं गई, पर साथ ही वह डर भी रही थी। फिर भी उसने सोचा, जो होगा देखा जाएगा। बाप को सजा मिलनी ही चाहिए। अगर हम चुपचाप रहेगें तो हम भी गुनाह के भागीदार होंगे, पर सवाल था कि क्या करें। मां को कैसे बताएं।

दूसरे दिन सब काम पर चले गए। दोपहर होने से पहले ही उमा ने मां को घर चलने की ज़िद की। बोली तबियत ठीक नहीं है। मां को किसी तरह राजी किया। खाने की छुट्टी के बाद दोनों घर आ गईं। बाप को रंगे हाथों पकड़ लिया। मां को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। फिर भी दोनों ने बाप को मार-पीटकर घर से बाहर निकाल दिया। बाप के जाने के बाद मां फूट-फूटकर रोने लगी। उमा ने ढाढस बंधाया।

पुलिस की बेरुखी

फिर मां-बेटी शन्नो को लेकर थाने पहुंची, लेकिन रिपोर्ट दर्ज नहीं हुई। थानेदार ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। भला एक बाप कहीं ऐसा कर सकता है। दिमाग खराब है। यह औरतें बदमाश हैं। खुद धंधा करती हैं। रुपये ऐंठना चाहती होंगी। डांट-डपटकर थाने से निकाल दिया। लेकिन उमा ने हार नहीं मानी। गांव के मुखिया के पास गई। स्कूल मास्टरजी को बताया। आस-पास के लोगों से कहती फिरी। बाप की फैक्टरी पहुंची। उसके साथियों और अफसरानों से बात करी। आखिर लोगों को बात माननी पड़ी।

समाज का विरोध

कुछ लोगों ने उसका विरोध किया। कुछ गांव वाले नाराज हुए। जाति वाले उन पर उंगली उठाने लगे। आख़िर एक मर्द की इज़्जत का सवाल था। गांव की बदनामी थी। जाति-धर्म की बदनामी थी। अगर कुछ ऐसा हुआ भी तो यह तो घर की बात थी। इतना बखेड़ा खड़ा करने की क्या जरूरत थी। चुप रहती, इसी में सबकी भलाई है। इज़्जत भी बनी रहती।

मुजरिम को सजा

इस विरोध के बावजूद उमा और उसकी मां डटी रहीं। बाप की फैक्टरी के बाहर बैठी रहीं—जब

(क्रमशः पृष्ठ 25 पर)

उमा ने फैसला किया – (पृष्ठ 22 का शेष)

तक कि कुछ कार्यवाही नहीं हो गई। बाप की नौकरी छूट गई। उसके फंड के रुपये भी उमा और मां को मिले। उस रुपये से शन्नो के पैरों का इलाज कराया। बाप के खिलाफ़ मुकदमा चल रहा है। उसकी जमानत भी नहीं हुई। वह जेल में बंद है।

उमा, शन्नो और उनकी मां काफी परेशानियों से जूझ रही हैं। बाप की कमाई अब घर में नहीं है। गुजारा मुश्किल है। लोगों के ताने हैं। मुक्दमे का खर्चा है। गरीबी और भूख है। पर साथ ही हिम्मत है। बदला लेने और सजा दिलाने का निश्चय है। अपने ऊपर एक विश्वास है।आप समाज से एक सवाल एक उम्मीद है। अब फैसला हमारे हाथ है। उनकी मदद करें या सच्चाई को नजरअंदाज करे। झूठी इज़्ज़त ढक या जुर्म खत्म करने को एकजुट हो जाए। □

शमीम बानो के कुछ सवाल

शांति व माया

शमीम बानो आज भी इंसाफ़ पाने के लिए जूझ रही है। उसके बच्चों को हक मिलेगा या नहीं–वह नहीं जानती। कानून को सबूत चाहिए पर ज़िन्दगी की जद्दोजहद में आदमी की संवेदना और विश्वास को कोई सबूत नहीं चाहिए। वह सिर्फ संघर्ष की शक्ति देता है।

शमीम बानो दक्षिण दिल्ली की एक ग़ैरकानूनी बस्ती सुभाष कैम्प में रहती है। 15 गज की झुग्गी में शमीम बानो की ज़िंदगी में आये इतने तूफान- एक ही बेटी पैदा हुई। पड़ोस के तानों से बेटे की उम्मीद सुलगती रही पर यह आस पूरी हुई नहीं। पति गुजर गया। शमीम ने फैसला लिया-"एक ही बेटी पर ज़िंदगी निकाल दूंगी। दूसरा पति नहीं करूंगी।" अपनी कमाई से बेटी का निकाह किया। बहुत उम्मीद थी शमीम को इस शादी से। दामाद से मानो मां बेटे की कमी पूरी कर रही हो मगर शमीम के जीवन में वक्त बदला नहीं। दामाद भी उसे पापी ही मिला।

सपना टूटा

बेटी रूकय्या की शादी हुए महीना भी नहीं निकला कि वह शराब पीकर मारपीट करने लगा। शमीम का मन तड़प उठा। अपनी बेटी का हाथ इसलिये तो आदमी के हाथ में नहीं दिया था कि वह भूखी प्यासी पिटती रहे। वह गुस्से में फुफकारती हुई बेटी के घर पहुंच गयी। अपनी इकलौती औलाद के सुख की ममता और समाज का डर कि लोग कहेंगे-'आप अकेली है तो बेटी को अलग करना चाहती है।' इस सोच से वह दामाद और बेटी को कुछ समय के लिए अपने घर ले आई। दामाद गुड़ की तरह मीठा बनता रहा। शमीम को दामाद पर विश्वास होने लगा और एक शाम ऐसी आई कि दामाद ने अपनी सास को चाय बनाकर कप पकड़ाते हुए कहा- "अम्मा बहुत

थकी हो चाय पी लो।" शमीम ने दो घूंट चाय पी ही थी कि उसे नशा सा आने लगा। दामाद को लगा कि चाय में मिलाई नशीली दवा का असर हो गया और वह हैवान अपनी असल पहचान में आ गया। अपनी सास का बलात्कार करने के इरादे से उस पर झपट पड़ा। मगर शमीम ने अपने नशीले ढीले हाथ पैरों से लड़ने की कोशिश की और चीखने चिल्लाने लगी। शोर सुनकर उसकी बेटी, बच्चे व पड़ोसी इक्ट्ठे हो गये, पर तब तक वह जुल्मी भाग गया। कुछ दिनों बाद वह चाकू दिखाता हुआ सारी गली में धमकी देता हुआ न जाने किस गली में गायब हो गया। शमीम ने उसी रोज थाने में रिपोर्ट दर्ज करवाई कि हम मां बेटी की जान खतरे में है।

उसने ठान लिया

रूकय्या ने तब तय किया—"मैं नौकरी करूंगी। तलाक व गुजारे भत्ते की मांग करके बच्चों को खुद ही पाल लूंगी। मां-बेटी वकील करने या नौकरी खोजने अब स्कूटर में ही जाते। मां साये की तरह अपनी बेटी के साथ रहती, "वो जल्लाद कुछ भी कर सकता है। मैं अपनी गली और झुग्गी के बाहर कैसे उस आदमी से लड़ सकती हूं" और यूं बच्चों की हारी-बीमारी, रोज का खाना-पीना, आने जाने में कर्जा बढ़ता जा रहा था और साथ-साथ दामाद की धमकियां। कभी कोई आकर कहता, "गली के मोड़ पे चाकू लिए देखा था हमने।" कभी रिश्तेदार बताता "हमें कह रहा था, मैं देख लूंगा।" मां का मन यह सब सुनकर बैचेन हो जाता। रुकय्या समझाती—"जो गरजते हैं वो बरसते नहीं।" इस डर-अडर, विश्वास-अविश्वास में झूलते कुछ दिन बीत गये तो शमीम सोचने लगी—"घर में बैठे दिन-दहाड़े कैसे हिम्मत होगी कि वो मार दे। दस कदम की ही तो बात है सौदा लेकर आती हूं। यूं कब तक चलेगा।

एक दिन रुकय्या चावल बीन रही थी। उसका 3 साल का लड़का कंधे पे खड़ा ज़िद कर रहा था। लड़की गोद में पड़ी थी और शमीम अपनी चौखट से पीठ फेरकर कुछ कदम ही आगे गई थी कि

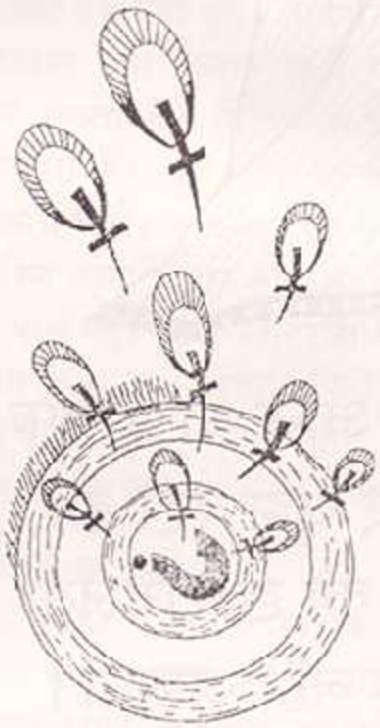

बच्चों की चीखें सुन वह पीछे दौड़ती हुई आ गई।

झुग्गी का गोबर लिपा फ़र्श खून से सराबोर था। यही रुकय्या अभी चावल बीनती, बेटे को डांटती लहूलुहान एक ओर लुढ़की पड़ी थी। दोनों बच्चे जोर-जोर से बिलख कर कह रहे थे 'पापा ने मारा है।' शमीम की चीख कलेजे में ही समा गयी।

शमीम के सवाल

इस हादसे के एक हफ्ते बाद जब हमें इस घटना की खबर मिली हम शमीम से मिलने गए। उसका सूना मन, उसके सूखे नयन और होंठों में झलक रहा था। ग़म और आक्रोश की तीखी—चुभन की कड़वाहट में वो बोली अब खून के बदले खून वाली सजा तो रही नहीं। वह आकर मुझे मारेगा। वो आज बंद है कल आजाद हो जाएगा। कानून वाले कहते हैं अपनों के नहीं किसी और के बयान

चाहिये। वो कहां से लाऊं। अब हमारे पास न तो आदमी है ना पैसा। कौन सुनेगा, लड़की के दो बच्चे देखूं या कमाने जाऊं? क्या खिलाऊं इन्हें?"

अरसा बीत गया

अब भी शमीम बानो अपने ही सवालों से जूझती बेटी के बच्चों को पाल रही है। अपनी इस तपस्या में वो कामयाब होगी या नहीं, वह नहीं जानती। कोठियों और घरों में काम करके वह उन्हें पाल रही है। दामाद कुछ कर न दे, इस भय से गांव और शहर के बीच घूमती रहती है। बेटी हाथ से गई। दामाद ज़मानत पर छूट गया। कानून को सबूत चाहिए, पर ज़िन्दगी की जद्दोजहद में आदमी को संवेदना और विश्वास को कोई सबूत नहीं चाहिए। वह सिर्फ संघर्ष की शक्ति देता है। यह एक ऐसा तप है जिसका फल भी उसे मिलने वाला नहीं। बच्चे बड़े होकर बाप के नाम से जाने जाएंगे। उस बाप के नाम से जिसने उनसे ममता का हक छीन लिया। उसे कौन पूछेगा तब? शमीम बानो अपनी तमाम मेहनत के बावजूद इंसाफ के लिए लड़ रही है। मुकदमे की तारीख पर जाती है। अपनी जान की परवाह उसे नहीं। चिन्ता है तो बच्चों की, उनके भविष्य की। क्या कानून उन्हें उनका हक देगा? □

वे हमें डायन कहते हैं...?

जुही

पितृसत्तात्मक समाज के मर्दाना रवैये हमेशा से ही औरतों पर हावी रहे हैं–या तो उसे देवी बनाकर त्याग की सीख दी गई, पूजा गया या फिर डायन, चुड़ैल करार देकर मौत के घाट उतार दिया गया–दोनों ही सूरतों में औरत को औरत की तरह जीने से महरूम रखा गया। औरतों की संस्कारगत सहनशीलता, समाज में उनका दोयम दर्जा, एकल स्थिति, आर्थिक-सामाजिक असुरक्षा, जमीन-जायदाद पर हक़ की कमी–तमाम ऐसे कारण हैं जो उन्हें मजबूर करते हैं–सहने के लिए।

बिहार के आदिवासी इलाकों में हर वर्ष लगभग डेढ़-सौ औरतों को 'डायन' करार देकर, पीट-पीटकर मार दिया जाता है या फिर बेइज़्ज़त करके जबरदस्ती गांव के बाहर निकाल दिया जाता है। ऐसा करने के पीछे कई दूसरे मकसद हो सकते हैं। किसी औरत का पति अगर मर जाए तो पड़ोसी-रिश्तेदार उसकी ज़मीन-जायदाद हड़पने के लिए उसे डायन करार दे देते हैं। किसी से कोई जातीय दुश्मनी निकालनी हो तो भी पड़ोसी बीमारी आदि के लिए ज़िम्मेदार ठहरा देते हैं। फिर गांव वाले मिलकर उसे या तो मार डालते हैं या फिर पत्थर फेंककर घायल करके गांव के बाहर फेंक देते हैं। यह सब सुनकर शायद इन बातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

पर इन औरतों के अनुभव खुद बोलते हैं–

पैंतालीस वर्ष की रूपीदेवी सिंह भूम, बिहार के बेलटंड गांव में रहती थी। दो साल पहले उसके भांजे बुद्धू मांझी की तीन महीने की लड़की बीमार पड़ गई। बुद्धू ने रूपी पर जादू-टोना करने का इल्ज़ाम लगाया। रूपी कहती है "हमको बदनाम किया और बहुत मारा भी"। रूपी और उसके परिवार वालों को गांव से निकाल दिया गया। उसने मिन्नतें, मनुहार सब किया पर एक ग़रीब औरत की पुकार कौन सुनता है।

सुमित्रादेवी

सुमित्रादेवी को 1992 में विधवा होने पर डायन करार दिया गया। गांव के महेश माथो ने इल्ज़ाम लगाया कि वह अपने पति को खा गई। गांव में छोटे बच्चे की मौत भी उसी के कारण हुई है। गुस्से से भरे गांव वालों ने उसे सजा देने की ठानी। उसका सर मूंड दिया, चेहरे पर कालिख और तेल पोतकर, अर्द्धनग्न अवस्था में सात गांवों में घुमाया। "हमें तो ज़िंदा जलाने जा रहे थे पर ठीक समय पर मेरा बेटा पुलिस लेकर

पहुंच गया।" दरअसल महेश माथो की नीयत सुमित्रा पर खराब थी। वह उसकी चार कोटा ज़मीन भी अपने नाम कराना चाहता था। पहले माथो ने पैसे मांगे। इंकार करने पर उसने अपना बदला इस तरह से लिया।

चटनी महताई

चटनी महताई की अपनी पड़ोसन नेपी से नहीं बनती थी। कुछ दिन बाद नेपी बीमार हो गई। घर वालों की लापरवाही से उसकी हालत बिगड़ती गई। ओझा बुलाया गया। ओझा ने कहा, पूजा का सारा ख़र्चा चटनी को उठाना पड़ेगा। गांव छोड़ना होगा। नेपी को भी मजबूर किया कि व कहे 'चटनी हमको खा रही है, उसी को बुलाओ नहीं तो हम मर जाएंगी।" चटनी को बाल पकड़कर घसीटते हुए चौपाल पर लाया गया। उसे पाखाना खाने को मजबूर किया और सिर मूंड दिया गया। फिर गांव से निकाल दिया। अब चटनी अपने भाई के पास रहती है। न्याय का इंतजार कर रही है पर कुर्सी पर बैठने वाले अफसर तो अंधे-बहरे होते हैं। फिर न्याय कहां से मिलता?

चंदो

कुछ ऐसा ही वाकया चंदो के साथ हुआ। विकलांग चंदो चैबासा ज़िले के परिया गांव में रहती थी। गांव के दंगों में उसके मां-बाप और पांच बच्चे मर गए। ओझा ने कहा, दंगे इसलिए हुए क्योंकि उसकी मां डायन थी। किसी ने गांव वालों का विरोध नहीं किया। चंदो को अपनी झोपड़ी व ज़मीन छोड़नी पड़ी। यही तो वे लोग चाहते थे।

पटना में सम्मेलन

यह सब आप बीतियां खुद इन्हीं औरतों की मुंह ज़ुबानी पटना में हाल ही में हुए "डायन प्रथा" के ख़िलाफ सम्मेलन में सुनने को मिली। जमशेदपुर की "फ्लक" संस्था द्वारा आयोजित इस सम्मेलन में 26 जवान, अधेड़ व बूढ़ी औरतें शामिल थीं। इन सभी औरतों को उनके नाते-रिश्तेदार, पास-पड़ोसियों ने घोर, अमानवीय यातनाएं देकर गांव से निकाल दिया। आमतौर पर यह मर्द वह लोग थे जिनकी गांव में साख थी। ये लोग औरत का या तो शारीरिक शोषण नहीं कर पाये या फिर ज़मीन-जायदाद पर इनकी नज़र थी। इसलिए पंचायत और गांव के दूसरे लोगों की मदद से इन औरतों को "डायन" करार दिया गया। बिना किसी भी गलती के इसका फल इन्हें व इन औरतों के परिवार वाले भुगतते हैं।

संयुक्त अभियान चलाने होंगे

इस समस्या के समाधान के लिए ही इस सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन के बाद चैबासा ज़िले के अधिकारियों की मदद से इस इलाके में 'अंध-विश्वास निवारण अभियान' शुरू किया गया है। इस अभियान को आदिवासी व ग़ैर-आदिवासी दोनों इलाको में चलाया जाएगा। पर अब समय की मांग है कि इस तरह के योजनाबद्ध अभियान बिहार के बाकी इलाकों में भी चलाए जाएं। कुछ संवेदनशील सामाजिक संस्थाएं व आम लोगों को इन अभियानों में शामिल किया जाए। यह समस्या पूरे समाज की है और इसका निवारण भी व्यापक तौर पर करना होगा। सिर्फ़ सर झुकाकर तमाशबीन बनने से काम नहीं चलेगा। पुलिस, सरकार और जनता सभी को एकजुट होकर, निर्दोष औरतों पर इस अत्याचार का विरोध करना होगा। □

भोजन के रिवाज: विश्वास और औरतें

पितृसत्तात्मक समाज के पितृसत्तात्मक रवैये औरतों के जीवन ही नहीं उनके खान-पान तक पर पाबन्दी लगाते हैं। इन नियमों में हम स्वयं इस तरह फंसी रहती हैं कि अपने खान-पान को त्याग, व्रत, उपवास के नाम पर भुला बैठती हैं। क्या है ठीक है?

समाज में लड़कियों तथा औरतों के दोयम दर्जे के अनुरूप उनके खाने-पीने में भी भेदभाव दिखलाई पड़ता है। हमारी स्वसहायता कार्यशालाओं में देहाती व सहयोगी महिलाएं कुछ इस तरह की टिप्पणियां देती थीं "खाना महत्वपूर्ण है, लेकिन मैं कभी परिवार के मर्दों और बच्चों के साथ बैठकर नहीं खाती... मैं पहले उन्हें परोसती हूं और बाद में जो बचता है वो खाती हूं" अच्छी पत्नी और अच्छी माता की विचारधारा मांग करती है कि औरत सबसे अंत में खाए और बच्चों को खिला-पिला कर बचा खुचा खाए। परिवार के भीतर भी जब खाना कम होता है तो लड़कों को लड़कियों से पहले खिलाया जाता है। लड़कियां कम उम्र से ही घर में अपने जायज हक़ को छोड़कर त्याग करने का पाठ पढ़ लेती हैं।

पितृसत्ता तथा औरतों की खुराक

प्रायः घर में जिसके पास पैसे का नियंत्रण होता है वही भोजन के बंटवारे का नियंत्रण भी करता है। अगर औरतें कमाती भी हैं तो भी नियंत्रण रहता है। इसके अलावा औरत पर इतने सारे कामों का बोझ होता है कि उसके पास शायद ही पर्याप्त समय होता है कि वह बच्चों के खिलाफ़ और खुद खाए। हमने अपने काम के दौरान पाया कि प्रायः औरतें कहती हैं कि उनका उपवास है। उपवास के पीछे हमेशा धार्मिक कारण नहीं होता। भोजन की कमी के कारण उपवास खुद पर थोप लिए जाते हैं। बजाय यह कहने के कि मर्दों की तुलना में औरतें अधिक संख्या में उपवास रखती हैं।

धर्म और औरतों की खुराक

धर्म भी औरतों के खान-पान पर बहुत से बंधन लगाता है, खासतौर पर विधवाओं पर। विधवाओं को स्वादिष्ट खाना खाने की इजाज़त नहीं है। कुछ चीजें जैसे लहसुन, मांस-मछली आदि खाने की मनाही होती है। इसके पीछे विचार यह है कि जब उसके जीवन का पुरुष नीं रहा तो अब उसे त्याग और आध्यात्म का जीवन बिताना

चाहिए। बगैर पति की मौजूदगी के उन्हें तामसिक भोजन नहीं खाना चाहिए वरना उससे उनकी यौन इच्छाएं जाग सकती हैं।

सिर्फ़ एक समय में औरत बिना रोक टोक के खा सकती है वह है जब उसे माहवारी शुरू होती है तथा उसे रस्म के तौर पर खूब खिलाया जाता है।

गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली माताओं की खुराक

गर्भ के दौरान तथा जब गोद में दूध पीता बच्चा हो उस समय में देश के विभिन्न पारम्परिक समुदायों में औरत की खुराक पर कई तरह की बंदिशें लगाई जाती हैं। यह माना जाता है कि अगर गर्भवती औरत ज़्यादा खाएगी तो पेट में बच्चे के लिए कम जगह रह जाएगी। पेट में खाना और बच्चा दोनों के लिए जगह मानी जाती है तथा बच्चे की जरूरत को प्राथमिकता देने के लिए मां को कम खाना चाहिए। गर्भवती औरत की खुराक पर नियंत्रण रखने का एक और कारण शायद यह है कि यदि औरत का वजन अधिक बढ़ गया तो वह खेत में और घर में ज़्यादा काम नहीं कर पाएगी।

एक खास प्रथा

सारे भारत में एक प्रथा काफी प्रचलित है वह है श्रीमन्त गर्भ के सातवें महीने में कुछ खास रस्में की जाती हैं तथा माता पिता बनने वाले जोड़े को विभिन्न प्रकार के पकवान बना कर दिए जाते हैं। इसका उद्देश्य गर्भवती और को उत्साह और हिम्मत देना है तथा गर्भ का समय लगभग पूरा होने की खुशी मनाना है। आमतौर पर ये मिठाईयां आटे, गुड़, घी, मेथी और सूखे मेवे से बनाई जाती हैं। गर्भ के अन्तिम दिनों औरत को ये सब चीज़ें रोज़ खानी होती हैं। यह एक अच्छा रिवाज है, क्योंकि इसके द्वारा औरत के पेट में पल रहे बच्चे के लिए आखिरी तीन महीनों में आवश्यक प्रोटीन और कैलोरी पर्याप्त मात्रा में मिल जाती हैं।

कुछ खास मान्यताएं

गर्भवती औरत के लिए कई खाद्य पदार्थ की मनाही होती है जैसे दूध या दूध से बनी चीजें मूंगफली या कोई भी चिकनी या सफेद वस्तु जैसे (केला) दाईयों का मानना है कि इन चीजों को खाने से बच्चे के ऊपर 'सफेद परत' (Vernix) जम जाती है तथा इससे प्रसव में देर लगती है, क्योंकि बच्चा मां के पेट में चिपक जाता है। बाजरा, अंडे आदि जैसे गर्भ खाद्य पदार्थ भी मना होते हैं। गर्भ के दौरान पपीता खाना भी मना होता है,

जिसमें पपेन नाम का एक पदार्थ (Hydrolyses) होता है जिससे शायद गर्भपात की संभावना हो सकती है।

गुजरात में गर्भ के दौरान छाछ आदि जैसी खट्टी चीजों के खाने पीने पर रोक होती है। ऐसा माना

(क्रमशः पृष्ठ 33 पर)

भोजन के रिवाज... (पृष्ठ 29 का शेष)

जाता है कि इससे धनुरी (Tetanus) हो सकता है। यह प्रथा आयुर्वेद में भी मिलती है। आयुर्वेद का मानना है कि खट्टी चीजों के खाने से जख्म देर से भरते हैं।

कुछ चीज़ें गर्भ तथा दूध पिलाने के समय में हर जगह खिलाई जाती हैं मेथी, बबूल का गोंद, कत्था अजवायन। इन चीजों को ताक़त देने ताथ दूध बढ़ाने वाली माना जाता है। आदिवासी औरतें महुवा के फूल भी खाती हैं, इसे भी गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली औरतों के लिए गुणकारी समझा जाता है। हमारे गांव में जचगी के बाद औरत को उसदियों (Garden Cress seed) की खीर खिलाई जाती है माना जाता है कि यह गर्भ होती है इसे खाने से कभी कमर में दर्द की शिकायत नहीं होती। □

(वली बेन सारथी की आरोग्य सखी)

क्या आप जानती हैं?

अधिकारों की बात आती है तो हमें सब भूल ही जाते हैं–सब क्यों हम खुद ही कब अपने हक और अधिकारों के प्रति जागरूक रहती हैं। कानून हमें अधिकार देता है–लेकिन उनकी जानकारी और सही उपयोग तो हमारे ही हाथ में है न!

- 18 साल की उमर के बाद आप बालिग हो और अपनी ज़िन्दगी के सभी फैसले लेने की हकदार। कानूनी तौर पर कोई भी आपको आपकी इच्छा के खिलाफ़ कुछ भी करने पर मजबूर नहीं कर सकता—आपके मां-बाप भी नहीं। आपको बन्द करके रखने, आगे पढ़ने से रोकने या जबर्दस्ती शादी करने को मजबूर करने पर आप इसका विरोध कर सकती हो और कोर्ट में इसके लिए लड़ाई भी कर सकती हो।
- अगर आपके हालात मजबूर करते हैं तो आप अलग रहने का फैसला ले सकती हो। कुछ बड़े शहरों में औरतों के लिए सुरक्षित रहने की जगह हैं।
- अपने पिता की ज़िन्दगी में कमाई जायदाद में हिन्दू कानून के तहत लड़की और लड़के का बराबर हक़ है। पुश्तैनी जायदाद में लड़की को बराबरी का हक़ अभी भी नहीं है।
- ये कानूनी ज़रूरत नहीं कि आप शादी के बाद अपना नाम बदलें। आप चाहो तो अपना कुंवारेपन का नाम शादी के बाद भी इस्तेमाल कर सकती हो।
- अपने वेतन/अपनी कमाई पर आपका पूरा हक है। आप अपनी इच्छा के अनुसार उसका इस्तेमाल कर सकती हो।
- आप अपने अकेले नाम पर बैंक में खाता खोल सकती हो। बिना पढ़ी-लिखी बहन भी अंगूठा लगाकर अपना खाता खोल सकती हैं।

- आपको अपनी शादी के समय और बाद में आपके मां-बाप और ससुराल से जो कुछ भी मिला है वो आपका स्त्री-धन है जिस पर आपका पूरा अधिकार है।
- पत्नी पति के पास जो भी जायदाद है, जैसे खेती की ज़मीन या घर वगैरह वो पत्नी के या दोनों के संयुक्त नाम पर भी रजिस्टर हो सकती है।
- राशन कार्ड पत्नी या पति किसी के भी नाम पर बन सकता है। पति के नाम पर राशन कार्ड बनाना ज़रूरी नहीं।
- स्कूल में बच्चे का दाखिला कराते वक्त मां अपना नाम अभिभावक के रूप में दे सकती है।
- अगर आपको अनचाहा गर्भ ठहर जाये तो आप किसी भी सरकारी अस्पताल में गर्भपात करवा सकती हो। 1971 में बने इस कानून के तहत कोई भी ग़ैर शादी-शुदा या शादी-शुदा औरत गर्भपात करवा सकती है। गर्भपात करवाना औरत का निजी फ़ैसला है जिसके लिए उसे किसी और की (पति की भी) इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं है।
- अकेली, बेशादी-शुदा या तलाकशुदा औरत बच्ची/बच्चा गोद ले सकती है।
- अगर किन्हीं वजहों से आपके और आपके पति के बीच कोई आपसी मतभेद या लड़ाई चल रही हो तो भी आपका पति आपको घर से बाहर नहीं निकाल सकता। शादी के बाद आपका भी उस घर में उतना ही हक है जितना आपके पति का।
- मां-बाप का तलाक हो जाने के बाद भी

बच्चों का अपनी पिता की जायदाद में हक़ खत्म नहीं होता।

- वैसे कानून यह कहता है कि बच्चों का असली वारिस पिता होता है, मां केवल उनकी देखभाल के लिए है, पर अगर पिता बच्चों को नहीं देख रहा है तो मां कोर्ट में केस करके अपने बच्चों की मांग कर सकती है।
- कई बार औरत को आदमी छोड़ देता है, परेशान करता है और खर्चा नहीं देता जिससे वो और उसके नाबालिग बच्चे एक बेसहारा और मोहताज ज़िन्दगी जीने पर मजबूर हो जाते हैं। इन हालातों में कानून की तरफ से धारा 125 (आई.पी.सी.) के तहत आपको अपने पति से गुजारा खर्चा पाने का हक है। ज्यादा से ज्यादा 500 रुपये की तुरन्त सहायता देने का भी प्रावधान है, पर कई बार कोर्ट से आर्डर होने के बाद भी आदमी खर्चा नहीं

देता है और औरत को परेशानी उठानी पड़ती है। सामूहिक दबाव डालकर एक बार में जितना मिल सके उतना पैसा ले लेना भी एक तरीका है जो आप इस्तेमाल कर सकती हैं।

- औरत को आदमी के बराबर मजदूरी बहुत कम जगहों पर मिलती है जबकि औरतों को आदमी के बराबर मेहनताना मिले इसके लिए 1976 में 'समान वेतन कानून' पास किया गया था। ये कानून खेत मज़दूरी और दूसरे सभी उद्योगों पर लागू होता है।
- इस कानून के तहत कुछ उद्योगों में जैसे खदानों, फैक्ट्रियों वगैरह में औरत का रातपाली में काम करना मना है, पर इसके अलावा किसी भी तरह के काम देने में मालिक आपके साथ औरत होने के नाते भेदभाव नहीं कर सकता।
- आपके साथ हुए किसी भी सैक्स सम्बन्धी अपराधों को आपको चुप रह कर सहने की ज़रूरत नहीं है। अगर आपके साथ कोई छेड़खानी करता है, शरीर के साथ खिलवाड़ या अनाचार करता है या असभ्य तरीके से शरीर पर आक्रमण करता है, यानि कोई भी आपकी मर्जी के खिलाफ़ बर्ताव करता है तो आप इसकी रिपोर्ट पुलिस में लिखवा सकती हो जिसके आधार पर अभियुक्त को गिरफ़्तार करके कोर्ट में पेश करने की ज़िम्मेदारी पुलिस की है।
- आपके पति को छोड़कर कोई भी आदमी (परिवार के सदस्य भी) अगर आपकी मर्ज़ी के खिलाफ़ और सम्मति के बग़ैर सम्भोग की कोशिश करता है तो उसे बलात्कार माना जायेगा जिसके खिलाफ़ आप धारा 375 के तहत जुर्म की शिकायत पुलिस थाने में कर सकती हो। रिपोर्ट का तुरन्त लिखाना और जल्दी से जल्दी मेडिकल जांच कराना अपराध को साबित करने के लिए ज़रूरी कार्यवाही है।
- राजस्थान सरकार द्वारा 1987 में सती विरोधी अधिनियम लागू करने के बाद केन्द्रीय सरकार ने भी सती रोकथाम अधिनियम 1987 पास किया है। इस अधिनियम के महत सती बनाने में भागीदारी लेने वालों को हत्या के अपराध में गिरफ्तार कर कड़ी सजा का प्रावधान है। सती को महिमामंडित करने के प्रयासों पर सात साल की सजा और 30,000 रुपये का हर्ज़ाना जैसी सजा के द्वारा अंकुश लगाने की कोशिश की है।

समाज की तरक्की का आधार जब मिलें हमें हमारे अधिकार

जन्मपूर्व जांच पर तकनीकी नियंत्रण, महाराष्ट्र अधिनियम 1988 के तहत महाराष्ट्र सरकार ने जन्म से पहले कोख में बच्चे के लिंग को पता कर लेने की जो वैज्ञानिक तकनीकी सुविधा है, उसके इस्तेमाल के बारे में कुछ नियम बनाकर इसके गलत उपयोग, पर कुछ हद तक रोक लगाने की कोशिश की है। कानूनन इस तकनीक का इस्तेमाल कुछ खास परिस्थितियों में ही किया जा सकता है। अधिनियम का खास मकसद है—स्त्री शिशु की हत्या के बढ़ते सिलसिले पर रोक लगाना।

ये अधिनियम केवल महाराष्ट्र सरकार ने पास किया है। अब पूरे देश के महिला संगठनों की मांग है कि इस तरह का एक राष्ट्रीय अधिनियम पास किया जाये। महिलाओं के समूहों ने कुछ जरूरी सुझावों के साथ इस अधिनियम को तुरन्त पास कराने के लिए एक हस्ताक्षर अभियान चला रखा है जिसमें अगर आप जुड़ना चाहें तो 'नारी केन्द्र' बम्बई के पते पर सम्पर्क करें। □

104 बी, सनराइज़ अपार्टमेंट,
नेहरू रोड, वकोला सांताक्रुज (ई),
मुम्बई-400055, टेलीफोन-6140403

मेरा चेहरा
मेरा रंग
मेरे नैन-नक्श
मेरे हैं
कुदरत की देन हैं
मेरी पहचान हैं।

हमारा पन्ना

बच्चों की टोली

भिन भिन करती मक्खी आती
भन भन करता मच्छर आता
इन दोनों को देख मुझे
बहुत ज़ोर का ग़ुस्सा आता
जहां जहां ये दोनो जाते
वहां वहां बीमारी लाते
चैन नही ये लेने देते
नाक में हैं ये दम कर देते
आओ इनसे लड़ने को हम
बच्चों की इक टोली बनायें
मक्खी मारें मच्छर मारें
जहां भी हमको नज़र ये आयें

किस्सा चूहों की सरकार का

सुनीता ठाकुर

सब ठीक चल रहा था। चूहा मस्ती से राज कर रहा था– खुद खाता औरों को खिलाता। प्रजा पर भूखमरी होती तो चेलों से दाने डलवा देता। तुम भी खुश हम भी खुश।

मगर राज में गिरगिटों की फौज़ भी पैंतरे बदल रही थी–चूहा बेफ्रिक– हरे-हरे दानों की हरियाली में चौंधिया गया।

होना वही था जो हुआ– गिरगिटों के रंग जम गए। चूहे की चौपाल पर सुखा गहराने लगा। चमचों ने चाल खेल दी– तख्ता पलटता देख चूहा

बौखला गया। उसकी गद्दी पर कोई और क्यों उसी का अपना बैठेगा। कुछ न सूझा– बच्चे छोटे थे। चुहिया का दिमाग खूब चलता। यह सब राजपाट उसी की अक्ल का कमाल था चूहा मानता था।

सो तख्ता पलटा नहीं– चुहिया बन गई रानी। पहले बात और थी– पर अब चूहा सलाखों के भीतर चुहिया सलाखों से ऊपर। बाजी हाथ में आई चुहिया ने ली अंगड़ाई। सारा आकाश अपना कल का राजा गुलाम बना। चूहा खिसिया गया– सोचा था चुहिया की आढ़ में खूब चुगेगा दाना, पर चुहिया थी उस्ताद– पूछती सब पर बताती कुछ नहीं। दिनों का फेर सालों का रासा बन गया। चुहिया की तूती बोल चली– घर भी अपना बाहर भी अपना, मर्जी अपनी काम अपना मन अपना जनता अपनी– थोड़ा-थोड़ा खाओ तो हाज़मा हमेशा दुरूस्त रहता है न। □

चेतना

कविता वर्तवाल

सूरज की किरणें आती हैं।
सारी कलियां खिल जाती हैं।
अन्धकार सब खो जाता है।
सब जग सुन्दर हो जाता है।
चिड़ियां गाती है मिल जुलकर।
बहते हैं उनके मीठे स्वर।
ठन्डी-ठन्डी हवा सुहानी।
चलती है जैसी मस्तानी।
यह प्रातः की सुख बेला है।
धरती का सुख अलबेला है।
यही ताजगी यही कहनी।
नया जोश पाते हैं प्राणी।
खो देते हैं आलस सारा।
और काम लगता है प्यारा।
सुबह भली लगती है उनको।
मेहनत प्यारी लगती जिनको।
मेहनत सबसे अच्छा गुण है।
आलस बहुत बड़ा दुर्गुण है।
अगर सुबह भी अलसा जावें।
तो क्या जग सुन्दर हो पावें।

आपकी जानकारी के लिए

जागोरी औरतों का एक ट्रेनिंग कम्यूनिकेशन व डॉक्युमेन्टेशन सैन्टर है जो कि 1983 से औरतों से सम्बन्धित मुद्दों जैसे, हिंसा, स्वास्थ्य, कानून, नई आर्थिक नीति व जेण्डर संवेदनशीलता आदि से जुड़े विषयों पर काम कर रहा है। इन विषयों से जुड़ी सामग्री प्रकाशित करके हम आप लोगों तक कुछ जानकारी पहुंचाने का प्रयास करते रहे हैं।
इसी कड़ी में हमने इस वर्ष अपनी जागोरी की नोटबुक 1998 (डायरी) निकाली है जिसका विषय है 'फ़ैसले और फ़ासले'–पंचायती राज में औरतों की भागीदारी। इसके लिए सहयोग राशि 45 रुपये प्रति डायरी है।
जैण्डर संवेदनशीलता पर एक खुली व सरल जानकारी के लिए हमने एक किताब निकाली हैं जिसका नाम है 'लड़की क्या है? लड़का क्या है?' चार रंगों में प्रकाशित यह पुस्तक हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में उपलब्ध है। इसकी सहयोग राशि 45 रुपये प्रति पुस्तक है।
इसी विषय पर हमने एक पोस्टर भी निकाला है जिसका शीर्षक है 'तुम लड़की हो तुम्हें क्यों पढ़ना है?' इसके लिए सहयोग राशि 15 रुपये प्रति पोस्टर है। यह पोस्टर भी चार रंगों में प्रकाशित है। इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए आप जागोरी में लिख सकते हैं। □

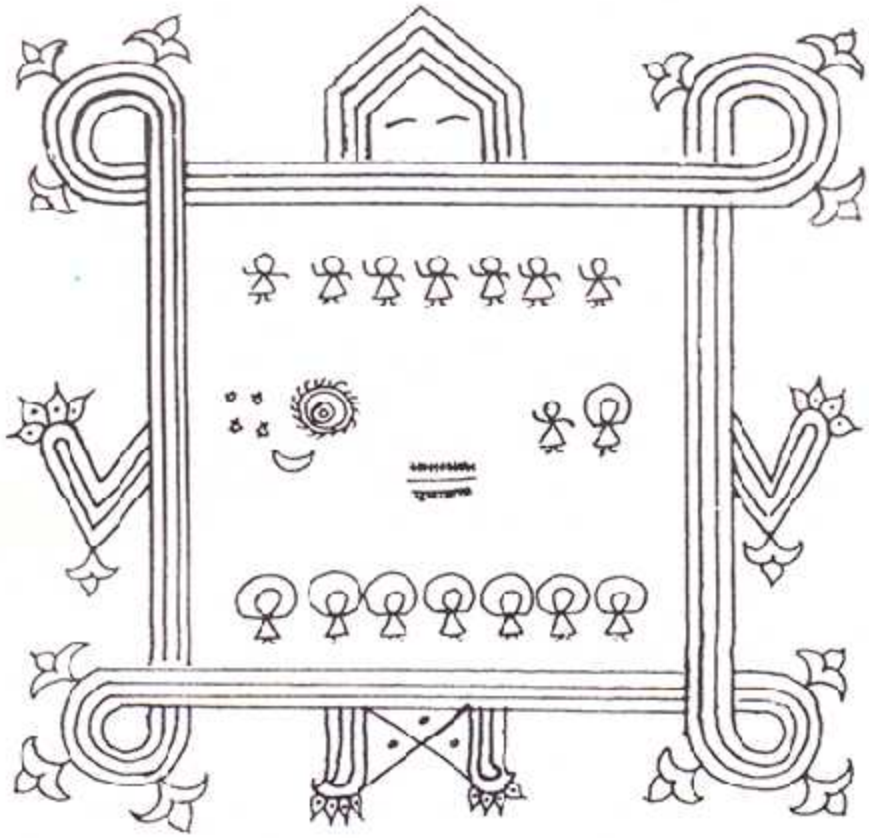

सुदामा हरिजन सखी है। मैंने उसे पानी पिलाया
तो पास-पड़ोस-सास-ननद सब नाराज़ हो गये।
मन परेशान हो गया।
सखी को साथ लेकर चलती हूँ तो समाज छूट
जाता है। समाज को साथ लेकर चलती हूँ
तो सखी छूट जाती है।